

**TEXT FLY WITHIN
THE BOOK ONLY**

**TIGHT BINGING
BOOK**

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180970

UNIVERSAL
LIBRARY

OUP- 875 -2-12-66—5,000 ~~FOR STUDENTS ONLY~~

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

H82.08
A 81P

Call No. H ~~831-43208~~ / ~~A 81P~~

Accession No. H3371

Author

अश्व, उपेन्द्रनाथ

Title

प्रतिलिपि एकत्रिकी

1961

This book should be returned on or before the date last marked

प्रतिनिधि एकांकी

संकलनकर्ता
उपेन्द्रनाथ अशक

नीलाभ प्रकाशन
इलाहाबाद-१

प्रथम संस्करण १९५० ३०००

द्वितीय संस्करण १९५५ ३०००

तृतीय संस्करण १९५८ ५०००

चतुर्थ संस्करण १९६१ ५०००

H 3376
H291.43278
(A81P

मूल्य ३)

प्रकाशक

नीलाभ प्रकाशन : ५, खुसरो बाग रोड, इलाहाबाद—१

मुद्रक

भार्गव प्रेस, १, बाई का बाग, इलाहाबाद-३

विज्ञप्ति

प्रतिनिधि एकांकी के संकलन में इस बात का विशेष ध्यान रखा गया है कि यह संग्रह हिन्दी के सर्वोत्कृष्ट एकांकियों का प्रतिनिधित्व ही न करे, वरन् हिन्दी भाषा-भाषी प्रान्तों के लब्ध-प्रतिष्ठ एकांकीकारों का भी प्रतिनिधि बने। न केवल यह, वरन् एकांकी की जितनी प्रमुख शैलियाँ हैं, वे इस संग्रह द्वारा जानी जा सकें। इस में ऐतिहासिक एकांकी भी हैं और सामाजिक भी, सुखांत भी हैं और दुखांत भी; हास्य-व्यंग्य से

ओतप्रोत भी और गाम्भीर्य का आवरण पहने हुए भी ।
 इसके अतिरिक्त श्री अश्व की भूमिका हिन्दी के एकांकी
 की कला का बड़ा सुन्दर विवेचन करती हैं और संग्रह
 को एकांकी के पाठकों और जिज्ञासुओं के लिए उपयोगी
 बनाती है ।

प्रतिनिधि एकांकी का पहला संस्करण १९५० ई०
 में छपा । गत दस वर्षों में यह संग्रह बड़ा ही लोकप्रिय
 हुआ है । हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग; दिल्ली विश्व-
 विद्यालय; बड़ौदा विश्वविद्यालय; हिन्दी प्रचार सभा,
 हैदराबाद; कलकत्ता विश्वविद्यालय; बनारस हिन्दू
 विश्वविद्यालय इरनाकुलम तथा प्रयाग विश्वविद्यालय
 के पाठ्यक्रम में स्वीकृत होकर समान्त हुआ है और
 इसकी लोक-प्रियता दिनों-दिन बढ़ रही है ।

—प्रकाशक

अनुक्रम

आमुख : श्री अश्वक	६
राजरानी सीता : डा० राम कुमार वर्मा	२६
बीमार का इलाज : श्री उदय शंकर भट्ट	५१
शिवा जी का सच्चा स्वरूप : सेठ गोविन्ददास	७१
स्ट्राइक : श्री भुवनेश्वर प्रसाद	७६
एक दिन : पं० लक्ष्मीनारायण मिश्र	८७
संस्कार और भावना : श्री विष्णु प्रभाकर	१२७
रीढ़ की हड्डी : श्री जगदीश चन्द्र ~~सिन्हा~~	१४२
सूखी डाली : श्री उपेन्द्रनाथ अश्वक	१६१

आमुख

हिन्दी के नाटक-साहित्य में आज एकांकी ने अपने लिए एक स्थायी महत्व का स्थान प्राप्त कर लिया है। एकांकी पढ़ने के लिए, खेलने के लिए और आल इंडिया रेडियो के विभिन्न केन्द्रों द्वारा प्रसारित करने के लिए लिखे जाते हैं और स्वतंत्रता मिलने के बाद, जब हमारा चिर-सुप्त रंगमंच आज जीवन की अंगड़ाई लेकर जाग रहा है, इस बात की आशा हो चली है कि एकांकी स्कूलों और कॉलेजों की सीमित परिधि तजकर देहात के विस्तृत प्रांगण में फैल जायगा।

एकांकी का इतिहास

लेकिन आज से पन्द्रह-बीस वर्ष पहले आधुनिक एकांकी को हिन्दी में कोई जानता भी न था। हिन्दी में एकांकी का सर्वथा अभाव हो, ऐसी बात नहीं। बहुत पहले हिन्दी में प्रहसन लिखे जाते थे (अधिकतर पढ़े जाने के हेतु) उनमें से कुछ एकांकी की पुरातन कला पर पूरे भी उतरते थे, पर न वे खेले जाते थे और न उनमें एकांकी की आधुनिक कला का प्रतिपादन था।

प्राचीन एकांकी

एकांकी की परम्परा हमारे यहाँ संस्कृत के नाटक साहित्य तक ले

जायी जा सकती है। भारत के स्वर्ण-युग में जहाँ कला के दूसरे अंगों का पूर्ण-विकास हुआ था, वहाँ एकांकी भी अपनी विभिन्नता के साथ उपस्थित था। महाकवि भास का 'उरुभंग' और नीलकण्ठ का 'कल्याण सौगंधिक' प्रसिद्ध एकांकी हैं। इनके अतिरिक्त 'गोष्ठी,' 'नाट्य रासक,' 'उल्लास्य,' 'काव्य,' तथा 'अंक,' आदि एकांकी ही के भिन्न रूप हैं। किन्तु संस्कृत के बाद हिन्दी तक आते-आते, जहाँ तक एकांकी का सम्बन्ध है, समय की गति में एक बड़ा र्गत दिखायी देता है। हिन्दी में पहले पहल एकांकी नाम की चीज़ भारतेन्दु तथा उनके समकालीनों के यहाँ दिखायी देती है। उस काल के एकांकी बड़े अपरिपक्व, आधुनिक एकांकी कला के तत्वों से वंचित, मनो-वैज्ञानिक विश्लेषण तथा यथार्थ के पुट से हीन थे। उनमें बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, विधवा-विलाप, अन्ध-भक्ति-भाव आदि समाज सुधार सम्बन्धी छोटे-छोटे विषयों को कहानी में न कहकर प्रहसन के रूप में कहने का प्रयास किया जाता था। सम्वाद उन एकांकियों का मुख्य अवलम्ब था और गति-हीनता भारी दोष, जिसके कारण 'प्रहसन' का नाम धराते हुए भी 'हास्य' का उनमें अभाव था। अधिकांश में हास्य प्रस्तुत करने के प्रयास खासे हास्यास्पद हो जाते थे। भारतेन्दु, राधाचरण गोस्वामी, किशोरीलाल गोस्वामी, बालकृष्ण भट्ट, हरिश्चन्द्र कुलश्रेष्ठ, प्रतापनारायण मिश्र आदि इस काल के प्रमुख एकांकी लेखक हैं। 'तन मन धन गोसाईं जी के अर्पण,' 'चौपट चपेट,' 'जैसा काम वैसा परिणाम,' कुछ एकांकियों के शीर्षक हैं। इन नामों ही से उन एकांकियों के गुण-दोषों का अनुमान विश पाठक कर सकते हैं।

एक घूंट

इसके पश्चात् प्रसाद जी के 'एक घूंट' तथा उसके साथ अथवा कुछ काल पश्चात् लिखे गये एकांकियों का युग आता है। डा० राम-

कुमार वर्मा के पहले एकांकी भी इसी युग में आते हैं। इस युग पर पश्चिम का सीधा प्रभाव पड़ा, ऐसा तो नहीं कहा जा सकता, परन्तु जिस प्रकार कहानी और उपन्यास हिन्दी में बंगला से होकर आये, उसी प्रकार एकांकी भी। १९२८ तक द्विजेन्द्रलाल राय के प्रायः सभा नाटक और रवि बाबू के प्रमुख नाटक—‘डाकघर,’ ‘राजा रानी,’ ‘चित्रांगदा,’ ‘कर्ण-कुन्ती’ आदि हिन्दी में आ चुके थे। इन नाटकों का प्रभाव हिन्दी पर न पड़ता, यह असम्भव था। १९२८ में प्रसाद का ‘एक घूँट’ प्रकाशित हुआ। यह सम्वाद प्रधान नाटक है। कार्य-गति इसमें नहीं के बराबर है और सम्भाषणों पर रवि बाबू का प्रभाव है। यही दशा उस समय में लिखे गये दूसरे एकांकियों की है। रवि बाबू पर ‘मैत्रलिक’ का बड़ा प्रभाव था। उनके ‘डाकघर,’ ‘राजा रानी’ आदि नाटकों पर विशेषकर ! क्योंकि रवि बाबू के इन नाटकों का प्रभाव हिन्दी के एकांकियों पर स्पष्ट अथवा अस्पष्ट रूप से है, इसलिए यह कहना अनुचित नहीं कि हिन्दी एकांकी के आरम्भिक काल पर पश्चिम का प्रभाव यदि प्रकट रूप से नहीं तो परोक्ष रूप से अवश्य रहा। संस्कृत के विद्वान होने के नाते प्रसाद जी ने निश्चय ही राय तथा रवि बाबू के अतिरिक्त संस्कृत के साहित्य से प्रेरणा प्राप्त की, परन्तु इस समय के दूसरे नाटककारों के बारे में यह नहीं कहा जा सकता।

श्री रामनाथ लाल ‘सुमन’ ‘एक घूँट’ को ही आधुनिक हिन्दी का प्रथम एकांकी मानते हैं। ‘एक घूँट’ एकांकी है, इसमें सन्देह नहीं, परन्तु यह आधुनिक है, ऐसा कहना गलत होगा। इसकी कला संस्कृत एकांकियों की-सी है और सम्भाषण रवि बाबू के-से। आधुनिक नाटक का-सा आरम्भ, विकास व उत्कर्ष, यथार्थता अथवा मनोवैज्ञानिक विश्लेषण इसमें बिलकुल नहीं। इसके अतिरिक्त परिहास का प्रयास बड़ा भौंडा है। उस समय रंगशाला ऐसे हास्य से

अपरचित थी जो स्थिति अथवा मनोवैज्ञानिक सत्य पर अवलम्बित हो। विदूषक यह हास्य प्रस्तुत करता था। 'एक घूँट' का चँदोला यह कार्य पुरानी परिपाटी के अनुसार भली भाँति सम्पन्न करता है। गति का इसमें नितान्त अभाव है। इसके सम्वाद भी गतिहीन-से हैं। जैसे एक व्यक्ति रुके-रुके बोलने लगे, गाने लगे और फिर हँसने लगे। चले बिलकुल नहीं। ऐसी ही इसकी गति है। परन्तु हिन्दी एकांकी के इतिहास में 'एक घूँट' का महत्व कम नहीं। इसे हम प्राचीन और अर्वाचीन नाटक के बीच की कड़ी मान सकते हैं।

कारवाँ और उसके बाद

१९३५ में भुवनेश्वर प्रसाद का 'कारवाँ' प्रकाशित हुआ। इस संग्रह पर पश्चिम का प्रभाव स्पष्ट है। पश्चिमी कला ही का नहीं, विचारधारा का भी समावेश इस संग्रह के नाटकों में है। न केवल संग्रह के द्वारा नाटककार ने नयी समस्याओं का हिन्दी पाठकों के समक्ष रखा, वरन् नयी कला को भी।

१९३५ से ४० तक आधुनिक एकांकी बड़ी क्षिप्र गति से हिन्दी में अपना अस्तित्व पाने लगा। पहले छिटपुट एकांकी प्रकाशित होते थे, पर १९३८ में 'हंस' सम्पादक श्रीपतराय ने 'हंस' का एकांकी नाटक अंक प्रकाशित कर इसे स्पष्ट रूप-रेखा प्रदान की। इस अंक में न केवल मौलिक एकांकी थी, वरन् अनूदित भी। इस अंक से छः सुन्दर एकांकी चुनकर श्रीपतराय ने उन्हें 'छः एकांकी' के नाम से पुस्तक रूप में भी प्रकाशित किया। सम्पादक 'हंस' के इन दोनों प्रयत्नों ने एकांकी को निश्चित रूप ही नहीं, निश्चित मार्ग भी दिया।

इसके साथ ही आल इंडिया रेडियो के भिन्न स्टेशनों पर एकांकियों की आवश्यकता प्रतीत हुई। इस आवश्यकता ने न केवल पुराने एकांकीकारों को सतत् एकांकी लिखने की प्रेरणा दी, वरन् नये एकांकीकार भी पैदा किये। रेडियो के एकांकी केवल ध्वनि के

अवलम्ब को लेकर चलते हैं। उनका क्षेत्र और भी सीमित हो जाता है। कुछ एकांकीकार रंगमंच के लिए एकांकी लिखकर उनके रेडियो संस्करण बनाते रहे। कुछ रेडियो के लिए 'फ्रीचर' (रेडियो-रूपक) लिखकर बस उतने से ही संतुष्ट रहे। कौन से एकांकी स्टेज को ध्यान में रखकर लिखे गये और कौन से केवल रेडियो को, यह विषय आलोचकों तथा अनुसंधानकर्ताओं के लिए बड़ा मनोगंजक होगा। जहाँ तक संकलन-कर्ताओं का सम्बन्ध है, वे अन्धाधुन्ध संकलन किये जा रहे हैं। बिना यह जाने कि नाटक रंगमंच के लिए लिखा गया अथवा रेडियो के लिए !

अर्वाचीन एकांकी

१९४५ के बाद एकांकी ने एक नये युग में प्रवेश किया है। एकांकी की कला निखर गयी है, उसमें विभिन्नता आ रही है और अब मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, राजनीतिक, प्रचारात्मक, छाया-नाटक, ध्वनि-नाटक, गीति-नाटक, नृत्य-नाटक, तथा कई अन्य प्रकार के नाटक लिखे जाने लगे हैं। एकांकी की इस प्रगति में अ० भ० पीपुल्स थियेटर (इपटा) का विशेष हाथ है। 'इपटा' ने चाहे अपने एकांकी तथा संगीत और नृत्य-नाटक एक विशेष प्रचारात्मक दृष्टिकोण से लिखें और खेले हैं, पर एकांकी के माध्यम से क्या कुछ किया जा सकता है और एकांकी को स्टेज पर कैसे प्रयोग किये जा सकते हैं, यह भली-भाँति जना दिया है। इन प्रयोगों के अनुकरण में देश की स्वतंत्रता के बाद, एकांकी की अपूर्व प्रगति के लक्षण दृष्टिगोचर हो रहे हैं। स्कूलों और कॉलेजों से निकल कर एकांकी कस्बों और गाँवों की नाटक मंडलियों पर अधिकार जमा रहा है। सरकार, गैर-सरकारी राजनीतिक और सामाजिक समितियाँ उसे अपने सिद्धान्तों के प्रचार का साधन बना रही हैं। यह बात एकांकी के और भी उज्ज्वल तथा प्रशस्त भविष्य की परिचायक है।

इंग्लिस्तान में एकांकी का जन्म

हमारे यहाँ एकांकी पहले-पहल अधिकतर पढ़ने ही के लिए लिखे गये, किन्तु इंग्लिस्तान में एकांकी का जन्म रंगमंच की आवश्यकता ही के कारण हुआ, वह घटना मनोरंजन भी है और एकांकी के तत्वों तथा एकांकी की सम्भावनाओं की ओर इंगित भी करती है। इसलिए एकांकी की कला और उसके तत्वों का उल्लेख करने से पहले मैं उमका जिक्र करूँगा।

आज से सत्तर-अस्सी वर्ष पहले इंग्लिस्तान में एकांकी सर्वथा लुप्त था। हमारे यहाँ तो संस्कृत में एकांकी लिखे जाते थे, पर अंग्रेजी साहित्य में कहीं उनका उल्लेख नहीं। इसलिए जब एकांकी का जन्म हुआ तो न उसे गम्भीरता से लिया गया और न उसे कोई महत्व ही दिया गया। गत को देर से खाना खाने के स्वभाव के कारण, जैसा कि उम समय इंग्लिस्तान के लोगों का था, रंगमंच के मालिकों का किसी ऐसी चीज़ की आवश्यकता पड़ी, जिससे वे दर्शकों का, उस समय तक मनोरंजन कर सकें, जब तक कि देर से खाना खाने वाले रंग-शाला में न पहुँच जायँ। वास्तव में रंग-शाला में कुछ लोगों के देर से आने के कारण, एक तो नाटक के आरम्भ में विघ्न पड़ जाता था, दूसरे पहले से बैठे हुए दर्शकों को बड़ी असुविधा होती थी। इसी समस्या का हल करने के लिए पट उन्नायक (Curtain raiser) का आविष्कार किया गया।

यह 'पट उन्नायक' एक छोटा-सा एकांकी होता था, जो पर्दा उठने से पहले खेला जाता था। पहले-पहल इसका रूप घटिया श्रेणी के प्रहसन का-सा था, जिसका उद्देश्य मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और जीवन का यथार्थ अथवा स्वाभाविक चित्रण न होकर दर्शकों का मनोरंजन-मात्र था। इसमें न नाटकीय द्रष्टव्य होता था, न अन्तिम विन्दु। परन्तु १६०३ में लन्दन के वैस्ट एंड थियेटर में एक ऐसी घटना हुई जिसने

उसको सस्ते, थोड़े और घटिया श्रेणी के प्रहसन के स्तर से उठाकर एकदम साहित्य का एक महत्वपूर्ण अंग बना दिया।

उस वर्ष डब्ल्यू० डब्ल्यू० जेकब का एक कहानी 'बन्दर का पंजा' एकांकी के रूप में पट-उन्नायक के स्थान पर खेती गया। किन्तु जब उसका पर्दा गिरा तो लागू इतने प्रभावित हुए कि जिस नाटक को देखने आये थे, उसे देखे बिना हाल से उठ गये।

उस समय रंगमंच के सर्वेसर्वा घबरा गये और इस भय से कि इस छोटे नाटक से लम्बे नाटकों का लोकप्रियता का धक्का न पहुँचे उन्होंने इसे रंगमंच से निर्वासित कर दिया। एकांकी के लिए यह अच्छा ही हुआ। व्यावसायिक रंगमंच से निकलकर वह देश के विस्तृत रंगमंच पर आया। नगर-नगर रंगशालाएँ बनीं और जीवन की विभिन्न समस्याओं पर एकांका नाटक खेले जाने लगे। बड़े भारी रंगमंच के पर्दे, फर्नीचर अथवा वेश-भूषा के दूसरे प्रसाधनों को एकांकी के लिए आवश्यकता न थी; किसी सम्राट, अमीर, नव्वाब अथवा किसी दूसरे ऐसे ही नायक के बिना भी काम चल सकता था और वे मजदूर अथवा देहाती जो अधिक शिक्षित न थे, अपनी विविध समस्याओं का समाधान एकांकी के छोटे से मंच पर पाने लगे। इस प्रकार इंग्लिस्तान में एकांका नाटक ने मनोरंजन के साथ-साथ समाज-सुधार और शिक्षा-प्रसार का काम भी किया और साहित्य के एक कोने में अपने लिए सुदृढ़ स्थान प्राप्त कर लिया। एक आलोचक ने उक्त घटना का उल्लेख इन शब्दों में किया है :—

"In that event nothing better could have happened to it, for if it proved to be a death blow to Curtain- Raiser, it resulted in the birth of short play as a new, vivid and a distinct form

of Dramatic Art.”

अर्थात् उस समय एकांकी नाटक के लिए इससे (‘बन्दर का पंजा’ की सफलता से) अच्छी कोई बात न हो सकती थी, क्योंकि यदि एक और यह घटना ‘पट-उन्नायक’ की मृत्यु का कारण बनी तो दूसरी और इससे उस संक्षिप्त नाटक का जन्म हुआ जो कला का एक अभिनय, स्पष्ट, और पृथक अंग बन गया।

आधुनिक बड़े नाटक और एकांकी

इसी एक घटना से हमें एकांकी के तत्वों का और उस अन्तर का पता चल जाता है जो आधुनिक बड़े नाटक और एकांकी में है।

एकांकी का सब से पहला तत्व उसका छोटा कैनवस है ‘पट-उन्नायक’ स्वयं एक छोटा प्रहसन होता था। ‘बन्दर का पंजा’ एक कहानी थी और उसका नाटकीय संस्करण भी, यद्यपि उसमें दृश्य-परिवर्तन था, छोटा ही था। इस घटना ने जिन नाटकों को जन्म दिया वे भी छोटे थे। एकांकी उन्हें इसलिए कहा गया कि उनकी अवधि उस समय के एक अंक जितनी थी और जहाँ कुछ एकांकियों में दृश्य-परिवर्तन भी थे, वहाँ अधिकांश ऐसे एकांकी लिखे गये जिनमें न केवल एक ही अंक था, वरन् दृश्य भी एक ही था।

उस समय जब पुराने पाँच-पाँच अंकों और बीस-बीस दृश्यों के स्थान पर तीन बड़े अंकों के (जिन में से अधिकांश में एक अंक एक ही दृश्य का होता था) नाटक खेले जाने लगे, एकांकी में भी दृश्य-परिवर्तन कम होते-होते एक पर आ गया, यद्यपि अब भी ऐसे एकांकी लिखे जाते हैं, जिनमें तीन-तीन दृश्य रहते हैं, किन्तु आधिक्य ऐसे ही एकांकियों का है जिनमें एक अंक एक ही दृश्य का होता है।

यही एक दूसरा प्रश्न उठता है कि यदि कोई नाटककार ऐसा एकांकी लिखे, जिसमें एक दृश्य अथवा अंक ही डेढ़-दो घंटे का हो (जो कि आधुनिक बड़े नाटक की पूरी अवधि है) तो क्या उसे एकांकी कहा

जायगा। मेरा उत्तर है—हाँ! उसे एक अंक का पूरा नाटक कहा जायगा! परन्तु उसकी गणना एकांकियों में न हाँकर बड़े नाटकों में हाँगी। इस में संदेह नहीं कि आलोचक कहानियों और उपन्यासों का भेद बताते हुए सौ-सौ, दो-दो सौ पृष्ठ की कहानियों को भी (यदि वे कहानो कला पर पूरी उतरती हों) कहानी ही कहते हैं, पर जनता उन्हें उपन्यास अथवा नावलेट ही के नाम से याद करती है। सज्जाद ज़हीर का नावलेट 'लन्दन की एक रात' और यशपाल का नावलेट 'पार्टी कामरेड' इसके उदाहरण हैं। यही हाल उस लम्बे एकांकी का भी हाँगा।

आलोचकों में आधुनिक बड़े नाटक की कला के सम्बन्ध में बड़ी आतियाँ फैली हुई हैं। हिन्दी में आधुनिक ढंग के बड़े नाटक लिखे ही बहुत कम गये हैं। हिन्दी भाषी अभी तक प्रसाद के बड़े-बड़े नाटकों के अभ्यस्त होने के कारण आधुनिक बड़े नाटक की कला को समझ नहीं पाये। इसलिए उन नाटकों को, जो आधुनिक कला की दृष्टि से बड़े पूरे नाटक (Full Plays) हैं, हमारे आलोचक तथा संकलनकर्ता एकांकी समझ लेते हैं। अभी कुछ दिन पहले एक विद्वान संकलनकर्ता ने मेरा बड़ा नाटक 'उड़ान' एकांकी समझ कर ही अपने संग्रह में दे दिया।

(क) आधुनिक बड़ा नाटक डेढ़ घंटे से अढ़ाई घंटे के अन्दर-अन्दर समाप्त हो जाता है। इसमें प्रायः तीन-चार अंक होते हैं। यद्यपि कुछ नाटकों के किसी-किसी अंक में दो-तीन दृश्य भी होते हैं, परन्तु अधिकांश नाटकों के अंक ही दृश्य होते हैं। अर्थात् इन्हें तीन अंक भी कह सकते हैं और तीन दृश्य भी। संकलन-त्रय के कारण दृश्य परिवर्तन कम-से-कम होता जा रहा है। एक अंक में एक ही दृश्य होता है। महत्व की बात नाटक की अवधि है। यदि कोई नाटककार संकलन-त्रय का प्रयोग इस ढंग से करे कि

एक ही अंक दो घंटे का लिख दे तो एकांकी हांते हुए भी वह पूरा नाटक ही होगा। उसी प्रकार जैसे यदि कोई कथाकर किसी कहानी को दो अर्द्धाई सौ पृष्ठ में लिख दे तो वह उपन्यास बन जायगी, कहानी न रहेगी।

इस आधुनिक बड़े नाटक की तुलना में आधुनिक एकांकी दस मिनट से लेकर आधे घंटे; पैंतालीस मिनट तक समाप्त हो जाता है, चाहे उसमें एक दृश्य हो अथवा द्वा-तीन। मेरा नाटक 'सूखी डाली' तीन दृश्यों का होकर भी एकांकी है, परन्तु 'आदि मार्ग' का 'मँवर' तीन दृश्यों का होकर भी पूरा नाटक है। जिसे 'प्रकार बड़ा नाटक डेढ़ घंटे से बढ़कर तीन घंटे तक हो सकता है, उसी प्रकार एकांकी भी दस मिनट से बढ़कर एक घंटे तक जा सकता है। प्रस्तुत संग्रह में सेंट गांविंद दास का एकांकी 'श्याजी का मच्चा रूप' (जो दस मिनट का है) और "आदि मार्ग" में मेरा एकांकी 'आदि मार्ग' (जो एक घंटे का है) मेरे इस कथन का प्रमाण हैं।

(ख) एकांकी को कला लगभग कहाना की कला है। इस अन्तर के साथ कि जहाँ कहानी में लेखक अपना और से सब कुछ कह सकता है, एकांकी में उसे जो कुछ कहना होता है, वह अपने पात्रों को ज़बानों अथवा उनके अभिनय के माध्यम से कहता है। प्रेमचन्द ने कहानी का एक ही गमले में सजे-सँवरे एक ही फूल के पौधे से उपमा दी है और उपन्यास को विविध पेड़-पौधों और लताओं से भरा एक एक उद्यान कहा है। एकांकी और बड़े नाटक में भा यही अन्तर है। पात्रों के पूरे चरित्र के किसी अंग का, उसके जीवन के किसी एक अंश की; अथवा उनकी विविध समस्याओं में से किसी एक समस्या की भाँकी ही एकांकी में मिलती है। वातायन से भाँकती हुई किरण जिस प्रकार कमरे का एक भाग ही आलोकित करती है, उसी प्रकार एकांकी के वातायन से दर्शक को पात्र अथवा वातावरण के एक ही

पहलू की झलक मिलती है ।

संक्षिप्त में, बड़े नाटक की तुलना में एकांकी जीवन के एक अंक का पृथक्, विछिन्न चित्र उपस्थित करता है । जीवन की एक भाँकी मात्र देता है । विभिन्नता के बदले एकीकरण; विशृङ्खलता के बदले एकाग्रता; पूर्णता के बदले अपूर्णता; फैलाव के बदले सिमटाव; विस्तार के बदले संक्षिप्तता इसके गुण हैं । एकांकी-लेखक किसी मूल-भूत विचार को उसकी समस्त सम्भावनाओं के साथ व्यक्त नहीं करता, उसका संकेत मात्र करता है ।

एकांकी के भाग

नाट्य विधान की दृष्टि से एकांकी के लगभग वही भाग हैं जो कहानी के ।

१. उद्घाटन : कहानी के प्रारम्भ ही की भाँति एकांकी का उद्घाटन भी दसियों ढंग से हो सकता है । नाटककार सीधे कथावस्तु में प्रवेश कर सकता है—पर्दा उठते ही पात्र बड़े ज़ोरों से किसी बात पर वाद-विवाद करते नज़र आ सकते हैं और उस वाद-विवाद ही से कथा-सूत्र आगे बढ़ सकता है या बाहर दरवाज़े पर दस्तक की आवाज़ आती है या कॉल बैल बज उठती है और नाटक प्रारम्भ हो जाता है अथवा पर्दा उठते ही पृष्ठ-भूमि में किसी के बातें करते आने की आवाज़ आ सकती है । किसी गाने की गूँज रंगमंच पर छा सकती है और उसी गाने की धुन से कथा वस्तु का ताना-बाना बुना जा सकता है....आदि-आदि !

२. विकास : इसी उद्घाटन में से कथावस्तु (यह कथावस्तु मात्र एक घटना भी हो सकती है) का विकास होता है । सम्भाषण अथवा अभिनय की सहायता से नाटक की घटना अथवा कहानी अथवा चरित्र-चित्रण आगे बढ़ता है और दर्शकों की उत्सुकता उसके साथ-साथ आगे बढ़ती जाती है ।

३. चरमोत्कर्ष : एकांकी में चरमोत्कर्ष वह भाग है जहाँ उत्सुकता अन्तिम विन्दु पर पहुँच जाती है और दर्शक अन्त के लिए व्यग्र हो उठता है ।

४. अन्त : चरमोत्कर्ष पर पहुँचने के बाद नाटक समाप्त हो जाता है ।

परन्तु जिस प्रकार कहानी की कला चन्द नियमों की सीमा में बद्ध नहीं, इसी प्रकार एकांकी-कला भी बँधे रुके नियमों की अपेक्षा नहीं रखती । एकांकी के प्रारम्भ की भाँति उसका अन्त भी तरह-तरह से किया जा सकता है—जिन एकांकियों में एक्शन (कार्यगति) की प्रचुरता रहती है, उनका अन्त प्राचीन नाटकों जैसा होगा । उनकी नाटकीयता दर्शकों को कर्तल-ध्वनि पर बाधित कर देगी । इसके विपरीत मनोवैज्ञानिक एकांकी का अन्त किसी एक ऐसे वाक्य पर हँस सकता है जो बरमे की भाँति दर्शकों के हृदय को छेदता चला जाय ।

आधुनिक एकांकी के अंग

रंग-संकेत, कार्यगति, अभिनय, सम्वाद, वातावरण, चरित्र-चित्रण, प्रकाश अथवा छाया का उचित अथवा अनुचित प्रयोग किसी एकांकी को सफल अथवा असफल बनाते हैं । सफल एकांकी में रंग-संकेत स्पष्ट, कार्य-गति क्षिप्र, अभिनय सुन्दर, सम्वाद चुस्त और चुटीले, चरित्र-चित्रण यथार्थ तथा मनोवैज्ञानिक और अवसर के अनुसार प्रकाश अथवा छाया का प्रयोग होना चाहिए ।

प्राचीन और अर्वाचीन एकांकी में अंतर

आधुनिक एकांकी के यही अंग हैं जो उसे संस्कृत के प्राचीन एकांकी से कहीं ऊँचा उठा देते हैं ।

संस्कृत के एकांकी और उसके अर्वाचीन स्वरूप में पहला भेद तो यह है कि जटिल नियमों में बद्ध होने पर भी संस्कृत एकांकी में निर्देश बिलकुल छोटे अथवा नहीं के बराबर थे । इसके विपरीत आधुनिक

एकांकी में वे लम्बे, व्यापक तथा स्पष्ट होते हैं। कारण यह है कि रंगमंच की कला, कम-से-कम यूरोप में, बड़ी विकसित हो गयी है। खुली हवा में खेले जाने वाले नाटकों से लेकर, घूमने वाले रंगमंच, बिजली फूट लाइट्स (Foot Lights) तथा रंगमंच के समस्त प्रसाधनों की सहायता से नाटक खेले जाते हैं। यथार्थ को रंगमंच पर सत्य कर दिखाने के प्रयास में ब्रिसियों साधन प्रयोग में लाये जाते हैं।

दूसरा भेद यह है कि नान्दी, मंगलाचरण, प्रस्तावना, सूत्रधार, नट, नटी, स्वगत आदि जो प्राचीन नाटक के आवश्यक अंग थे, अर्वाचीन नाटक में देखने को भी नहीं मिलते।

तीसरा यह कि अर्वाचीन एकांकी में नायक, नायिका, कथानकों तथा रसों के बन्धन भी नहीं।

चौथा यह कि प्राचीन की अपेक्षा आधुनिक एकांकी जीवन के अधिक समीप है। इसके सम्भाषणों में अधिक यथार्थता, तर्क तथा मनोवैज्ञानिक सत्य है। इसके कथानक कल्पना पर अवलम्बित होने पर भी जीवन की यथार्थता का उल्लंघन नहीं करते। इसका क्षेत्र जीवन-सा ही विस्तृत है और यह राजा महाराजाओं की बेकार घड़ियों के लिए मनोरंजन को सामग्री प्रस्तुत करने की अपेक्षा जनता के मनोरंजन, शिक्षण और ज्ञान-वर्धन का उद्देश्य पूरा करता है।

संकलन-त्रय

आधुनिक कहानों ही की भाँति आधुनिक एकांकी का सबसे बड़ा गुण संकलन-त्रय अर्थात् समय, स्थान और कार्य-गति का गुम्फन है। एक ही समय में एक ही स्थान पर एक-सी गति से नाटकीय कार्य चलता है। प्रायः एकांकी रंगमंच पर उतने समय में खेला जाता है, जिसमें कि वह वास्तविक-जीवन में खेला जा सकता है। एक दृश्य दस वर्ष पहले और दूसरा दस वर्ष बाद, एक शिमले और दूसरा नैनीताल आधुनिक नाटक में नहीं रहता। यह संकलन-त्रय आधुनिक नाटक को

वास्तविकता का अपूर्व पुट दे देता है।

एकांकी और कहानी

कहानी-जैसा गठा हुआ होकर भी एकांकी कहानी नहीं। यह ठीक है कि कुछ कहानियाँ बड़े सफल एकांकियों में परिवर्तित की जा सकती हैं, पर सभी कहानियों के सफल एकांकी नहीं बनाये जा सकते। इस कथन का उल्टा भी सत्य है। वास्तव में साहित्य के इन दोनों अंगों में उद्देश्य का अंतर है। इस उद्देश्य के अंतर से दोनों की कला में भिन्नता आ गयी है। कहानी का उद्देश्य पाठक के मनोरंजन तथा दृष्टिकोण को और एकांकी का उद्देश्य दर्शक के मनोरंजन तथा दृष्टिकोण को सामने रखना है। इसी लिए जहाँ कहानी में कई बार, जैसा कि दार्शनिक अथवा मनोवैज्ञानिक कहानियों में, घटना उतनी आवश्यक नहीं होती, वहाँ नाटक में यह अत्यन्त आवश्यक हो जाती है। फिर एकांकी का मुख्य माध्यम सम्वाद है। एकांकीकार को जो कहना होता है वह सम्वाद और अभिनय द्वारा ही कहता है। इस लिए जहाँ कई मनोवैज्ञानिक कहानियाँ एकांकियों में परिवर्तित नहीं की जा सकतीं, वहाँ कई अभिनय-प्रधान एकांकी भी कहानी के रूप में नहीं लाये जा सकते। जिन पाठकों ने 'इपटा' का 'जादू की कुर्सी' देखा है, वे मेरी यह बात भली भाँति समझ जायेंगे। 'जादू की कुर्सी' अभिनय-प्रधान नाटक है। और श्री बलराज साहनी के जिस अभिनय ने दर्शकों को हँसाते-हँसाते लोट-पोट कर दिया, वह कहानी में व्यक्त ही नहीं किया जा सकता है।

एकांकी और सम्भाषण

इसी तरह कुछ आलोचकों का यह मत कि एकांकी सम्भाषण ही का दूसरा नाम है, उतना ही सत्य है जितना यह कि ईंटों का ही दूसरा नाम मकान है। मकान ईंटों से बना है, इसमें कोई संदेह नहीं, पर ईंटें मकान नहीं। ईंटें मकान का प्रमुख साधन हैं। ईंटों के साथ गारा, चूना,

लकड़ी, कारीगर और दूसरी दस बातें भकान को भकान बनाती हैं ।

केवल सम्वाद, चाहे वे कितने भी अर्थपूर्ण तथा मनोरंजक क्यों न हों, नाटक नहीं कहला सकते । नाटक के लिए चरित्र-चित्रण, वातावरण, कथानक, अनन्यमनस्कता (Concentration) की आवश्यकता है । सम्भाषण एक साधन है जिससे दर्शकों को तन्मय रखा जा सकता है और घटना अथवा कथानक में अनन्यमनस्कता लायी जाती है । किन्तु तन्मय करने वाली चीज़ केवल सम्भाषण नहीं, बल्कि वह घटना अथवा मनोवैज्ञानिक सत्य है, जो सम्भाषण और अभिनय के द्वारा दर्शकों को दिखाया जाता है ।

अभिनय को रंगमंच पर खेले जाने वाले नाटक में सबसे बड़ा महत्व प्राप्त है । प्रायः लम्बे-लम्बे सम्भाषण वह प्रभाव उपस्थित नहीं कर सकते, जो एक छोटी-सी भंगिमा, एक दर्बी-घुटी सिसकी अथवा स्वर-आर्द्रता कर सकती है । सफल नाटक का सबसे बड़ा गुण यह है कि वह आरम्भ से अन्त तक दर्शकों को तन्मय रखे (यह बात अच्छे चुस्त सम्भाषण से भी हो सकती है) और जब वे उठें तो यह अनुभव हो कि उनका समय और पैसा व्यर्थ वर्बाद नहीं हुआ । (यह बात केवल सम्भाषण से सम्भव नहीं ।)

एकांकी के प्रकार

हिन्दी में निम्नलिखित प्रकार के एकांकी लिखे जाते हैं :

१. सम्वाद : ये एकांकी वास्तव में नाटक नहीं, केवल सम्वाद होते हैं । रंग-नर्देश इनमें नहीं के बराबर रहता है । किसी प्रकार के कथानक अथवा घटना-क्रम से ये हीन होते हैं । लेखक कोई चुटकुला अथवा किसी समस्या का हल इस सम्वाद के कथोपकथन द्वारा अपने पाठकों के सम्मुख रख देता है और बस ! रेडियो पर तो ये ब्राडकास्ट किये जा सकते हैं, पर रंगमंच पर यदि खेले जायें तो दर्शकों का मनोरंजन नहीं कर सकते ।

२. पाठकों के लिए लिखे जाने वाले एकांकी : इन एकांकियों में नाटकीयता तथा कार्य-गति का अभाव होता है। समस्या होती है, संघर्ष भी होता है; पर लम्बे-लम्बे वाद-विवाद होने अथवा लेखक को रंगमंच का ज्ञान न होने के कारण अथवा लेखक के सामने दर्शक के स्थान पर पाठक का दृष्टिकोण होने के कारण ये नाटक सुपाठ्य तो हो जाते हैं, अभिनेय नहीं। जैनेन्द्र जी का 'टकराहट' ऐसा ही नाटक है।

३. गीति-नाट्य : इन नाटकों में कथोपकथन काव्य ही में होता है। श्री उदयशंकर भट्ट ने कुछ ऐसे नाटक लिखे हैं। किन्तु ये भी अभिनेयता के दृष्टिकोण से नहीं, वरन् सुपाठ्यता के दृष्टिकोण से लिखे गये हैं। गीति नाट्य में यदि गीत, नृत्य, अभिनेयता और कहीं-कहीं विराम-स्वरूप गद्यमय सम्भाषणों का समावेश रहे तो रंगमंच पर बड़ा सफल हो सकता है। 'इपटा' ने ऐसे गीति-नाटक अथवा नृत्य-नाटक बड़ी सफलता से खेले हैं। ज्यों-ज्यों हमारा रंगमंच उन्नति करेगा, संगीत, नृत्य तथा अभिनय में जन की रुचि बढ़ेगी, गीति-नाट्य भी अपनी सत्ता पा जायगा।

४. रेडियो एकांकी : रेडियो नाटक दो तरह के लिखे जाते हैं :

(क) एकांकी : इस ध्वनि-एकांकी में सब कुछ वही होता है जो दृश्य-एकांकी में। अंतर केवल यह होता है कि रंगमंच के बदले रेडियो स्टेशन का माइक्रोफोन इसका माध्यम होता है। भाव-भंगिमा के स्थान पर स्वर-संक्रम अथवा स्वर-भेद महत्ता प्राप्त कर लेते हैं। कार्यगति भी वही रह सकती है जिसकी कल्पना उसके स्वर को सुनकर की जा सके। उदाहरणार्थ कुंडी खटखटाने की आवाज़, किसी के ज़ार-ज़ोर से चलने की आवाज़, आंधी-पानी की आवाज़, नदी बहने, बादल के गरजने, पशु-पक्षियों के बोलने की आवाज़ ध्वनि-नाटक में आ सकती है। किन्तु मुस्कराना तथा आँख और मुँह की अन्य भाव-भंगिमाएँ नहीं आ सकतीं। यही हाल गति की भंगिमाओं का है।

रही शेष कला, सो वह सब दृश्य-एकांकी भी होती है ।

(ख) रेडियो रूपक (Feature) फ्रीचर में प्रायः नाटकीयता कम और वर्णन (Narration) अधिक होता । उद्घोषक (Narrator) बार-बार आ जाता है और सुनने वालों को कहानी की वे बातें सुनाता है जो सम्भाषण द्वारा प्रस्तुत नहीं की जा सकती ।

५. दृश्य-नाटक : एकांकी का सबसे महत्वपूर्ण प्रकार दृश्य-नाटक है । ध्वनि-नाटक से भी इसकी महत्ता अधिक है, क्योंकि ध्वनि-नाटक में नाटक का रसिक केवल सुनता है और दृश्य-नाटक में नाटक अपने सामने होता देखता है । यहाँ सुनने और देखने का सम्मिश्रण होता है । इसीलिए आनन्द भी द्विगुण हो जाता है ।

एकांकी भारत में बड़ी त्वरित गति से उन्नति कर रहा है । वह दिन दूर नहीं जब नयी भावनाओं, नये विचारों और नये कला-प्रयोगों को लेकर हिन्दी में एकांकी लिखे जायँगे, ध्वनि-यंत्र से प्रसारित किये जायँगे और रंगमंच पर खेले जायँगे ।

५, खुसरोबाग रोड, प्रयाग

—उपेन्द्रनाथ अशक

१ मार्च १९५०

प्रतिनिधि एकांकी

डॉ० रामकुमार वर्मा

डॉ० रामकुमार वर्मा हिन्दी एकांकी साहित्य के जन्मदाताओं में से हैं। उनका पहला नाटक 'बादल की मृत्यु' १९३० में लिखा गया। प्रयाग विश्वविद्यालय में पहले पढ़ने, फिर पढ़ाने और इस प्रकार विश्व-विद्यालय के रंगमंच से सम्बन्ध स्थापित रहने से उन्हें एकांकी के रंगमंच का यथेष्ट अनुभव रहा, जिससे उनके नाटकों में अभिनेयता का गुण प्रचुर मात्रा में विद्यमान है। रेडियो के आविर्भाव के साथ उन्होंने रेडियो के लिए सफल एकांकी भी लिखे।

नाटककार से पहले डॉ० वर्मा सुकोमल भावनाओं के कवि हैं। इसलिए उनके अधिकांश नाटकों में (ऐतिहासिक एकांकियों में विशेषतः) उनका कवि नाटक के सम्बादों में अनायास मुखर हो उठता है। काव्य-सुलभ उपमाएँ और शब्दावली उनके एकांकियों को मनमोहक सुन्दरता प्रदान कर देती है। उनके सामाजिक एकांकियों में हास्य की क्षीण-सी रेखा आरम्भ से अन्त तक चली जाती है और सम्बाद और भी चुस्त और चुटीले हो जाते हैं।

'राजरानी सीता' वर्मा जी के ऐतिहासिक एकांकियों में से एक है। अपने काव्यमय सम्बादों और कार्य-गति के अपेक्षाकृत अभाव के कारण यद्यपि यह रेडियो पर और भी सफल हुआ है, तथापि यह रंगमंच पर भी सफलता से खेला जा सकता है और ऐसे एकांकियों का सुन्दर नमूना है, जो रंगमंच और रेडियो दोनों पर खेले जा सकते हैं।

रचनाएँ

एकांकी संग्रह :—‘वृध्वीराज की आँखें’ ; ‘रेशमी टाई’ ; ‘चारुमित्रा’ ;
‘विभूति’ ; ‘सप्त किरण’ ; ‘रूपरंग’ ; ‘कौमुदी-
महोत्सव’

काव्य :—निशीथ ; चन्द्ररेखा ; चन्द्रकिरण ; आकाश-गंगा
हिमहास (पद्य) ; एक लघ्य (महाकाव्य)

समालोचना :—कबीर का रहस्यवाद ; हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक
इतिहास; साहित्य समालोचना ।

राजरानी सीता

पात्र

राजरानी सीता : महाराज राम की पत्नी
मन्दोदरी : राजा रावण की पत्नी

विचित्रा	}	: राजा रावण की दासियाँ
सौदामिनी		
चित्रा		
मुलेश्वरी		
त्रिजटा		

हनुमान : महाराज राम के दूत
रावण : लंका का अधिपति

स्थान

अशोक वाटिका

[अशोक वृक्ष के नीचे महारानी सीता शोकमग्न-मुद्रा में बैठी हुई हैं। उनके समीप एक दासी, विचित्रा बैठी है। नेपथ्य में शंख और घंटा की ध्वनि हो रही है। आज रावण ने एक बहुत बड़ा महोत्सव भगवान शंकर के मन्दिर में किया है। धीरे-धीरे यह ध्वनि क्षीण होती है और फिर सम्मिलित स्वर में सुनायी पड़ता है : 'महादेव शंकर की जय !... भगवान त्रिपुरारी की जय !...महाराजाधिराज रावण की जय !'....

यह ध्वनि धीरे-धीरे मंद होती हुई वायु में विलीन हो जाती है। ऐसा ज्ञात होता है जैसे जय-ध्वनि करने वाले मन्दिर से बाहर जा रहे हैं ! जयध्वनि के वायु में विलीन होते-होते महारानी सीता के कण्ठ से एक गहरी सिसकी निकल उठती है ।]

विचित्रा—महारानी, आज महादेव शंकर के मन्दिर में महाराजा-धिराज रावण ने दसवाँ उत्सव मनाया । आपने राजाधिराज रावण की जय नहीं बोली ?

[महारानी सीता फिर सिसकी भरती हैं और सिसकी भरते हुए करुण शब्दों में कहती हैं :]

सीता—महा...राजाधिराज...राम की...जय !

विचित्रा—महाराजाधिराज राम की जय ! अब भी आपने महाराजाधिराज राम की जय कहनी नहीं छोड़ा ? आज दस मास बीत गये । आपको पाने के लिए महाराज ने भगवान शंकर के मन्दिर में दस उत्सव किये, आपने दस बार क्या, एक बार भी महाराज रावण की जय नहीं कही ?

सीता—कपट मृग के पीछे महाराज श्रीराम जिस प्रकार धनुष वाण लेकर दौड़े थे—भौहें कसी हुई थीं, नेत्र कुछ-कुछ लाल हो रहे थे, दृष्टि स्थिर थी, नीचे का होंठ दाँतों से दबा हुआ था, मुख पर कुछ पसीने के बिन्दु झलक रहे थे—ऐसे श्री राम की शोभा की—ऐसे श्री राम की जय ! एक बार नहीं—दस बार जय !

विचित्रा—आप जानती हैं इस हठ का क्या परिणाम होगा ?

सीता—मैं उस परिणाम के लिए व्याकुल हूँ बहन ! यदि शरीर से श्री राम के दर्शन न कर सकूँ तो प्राण से ही उनके समीप पहुँच सकूँ ! महाराज श्री राम से जाकर कौन कहे कि तुम अभी तक नहीं आये और सीता तुम्हारे विरह में.....

[सिसक उठती हैं । तीन दासियों का प्रवेश । इनका नाम

क्रमशः सौदामिनी, चित्रा और सुलेखा है ।]

सौदामिनी—महारानी, महाराज रावण इधर ही आ रहे हैं ।
विचित्रा तू बाहर जाकर महाराज का स्वागत कर ।

विचित्रा—बहुत अच्छा ।

(प्रस्थान)

चित्रा—(महारानी सीता से) महारानी, आप सिसकियाँ क्यों भर रही हैं ? आज तो उत्सव का दिन है । महाराज रावण ने आज भगवान शंकर की पूजा कर स्वयं वेद-पाठ किया है ।

सुलेखा—और पूजा करने के पूर्व महाराज ने आज्ञा की थी कि आज महारानी सीता का शृङ्गार हो ।

साता—जिसके हृदय में राम हैं, उसके शृङ्गार की आवश्यकता नहीं है ।

सौदामिनी—राम का स्मरण करते हुए आप थकती नहीं, आज आप इस नाम को भूल जायें । इस समय महाराज रावण का नाम सबसे ऊँचा है । ओफ़, आज महाराज की कितनी भव्य मूर्ति थी—मस्तक पर त्रिपुण्ड्र, भौंहों में कितनी कमनीयता, जैसे यज्ञ के धुएँ की काला रेखाएँ हों ! नेत्र यज्ञ के धुएँ से कुछ-कुछ लाल थे । हाथ में चन्द्रहास तलवार थी । क्यों चित्रा ?

चित्रा—और जब उन्होंने चन्द्रहास से अपना मस्तक काटकर भगवान शंकर के सामने अर्पण किया तो उसके कटे हुए सिर के मुख पर कितनी मधुर मुस्कान थी !

सुलेखा—और चित्रा, कितने आश्चर्य से हम लोगों ने देखा कि कटे हुए मस्तक के नीचे से दूसरा सिर फिर से महाराज के गले पर सुसज्जित हो गया है, यह प्रताप भगवान शंकर का है । क्यों सौदामिनी ?

सौदामिनी—महाराज की भक्ति का नहीं है ? वे कितने बड़े भक्त

हैं, यह तो सारा संसार जानता है। जब उन्होंने एक बार शंभु सहित सफ़ेद कैलाश पर्वत उठाया तो ऐसा मालूम हुआ जैसे आकाश रूपी नीले सरोवर में महाराज के हाथ रूपी कमल पर हंस शोभायमान हो रहा है। बिना ऊँची भक्ति के भला कोई भक्त भगवान शंभु को कैलाश पर्वत सहित उठा सकता है ?

चित्रा—यह तो महाराज का बल है सौदामिनी, महाराज की शक्ति और शूरवीरता तो इतनी अधिक है कि जब उन्होंने अपने हाथ से अपना सिर काट कर अग्नि में होम किया तो ब्रह्मा के लिखे हुए मस्तक के लेख महाराज ने अपने नवीन मुख से पढ़े। उनमें लिखा हुआ था कि तुम्हारी मृत्यु नर के हाथों से होगी। महाराज अट्टहास कर हँस पड़े। कहने लगे—बूढ़े ब्रह्मा की बुद्धि भी भ्रष्ट हो गयी है। जब शक्तिशाली देवता भी मेरे वश में हैं तो नर की शक्ति ही कितनी कि वह मेरे सामने खड़ा हो सके ?

सौदामिनी—महारानी सीता, ऐसे शक्तिशाली महाराज की बात स्वीकार करने में तुम्हें संकोच है ?

सीता—बड़े-मे-बड़ा जुगन् भी चन्द्रमा की समानता नहीं कर सकता ! (तीव्र स्वर से) मैं महाराज राम के अतिरिक्त किसी का नाम नहीं सुनना चाहती ।

सुनेखा—महारानी, मावधान ! ऐसा हठ मैंने जीवन में पहली बार देखा है। देव-कन्या, यक्ष-कन्या, गन्धर्व-कन्या, नर-कन्या, नाग-कन्या ऐसी कितनी ही सुन्दरियों ने महाराज के बाहु-बल पर मोहित हो कर आत्म-समर्पण कर दिया, किन्तु आपने.....

सीता—(सोचते हुए धीरे-धीरे) इनमें कोई विदेह-कन्या नहीं रही !

(नेपथ्य में 'महाराजा रावण की जय' का घोष)

सुलेखा—महारानी सीता, महाराज की आशानुसार आप

अपना शृङ्गार करें। महाराज आने ही वाले हैं।

साता—क्या महारानी मन्दोदरी के शृङ्गार से तुम्हारे महाराज रावण को संतोष नहीं हुआ ? अपनी महारानी के शृङ्गार को छोड़कर जो दृष्टि पर-नारी के शृङ्गार की ओर जाती है, वह दृष्टि तुम्हारे महाराज ने आग में होम नहीं की ? (करुण स्वर में) बेचारी मन्दोदरी !...

[नेपथ्य में फिर 'महाराजाधिराज रावण की जय' का घोष।

रावण के साथ महादेवी मन्दोदरी और दासी त्रिजटा आती हैं।

प्रवेश करते ही रावण का अट्टहास]

सौदामिनी—राजाधिराज और महादेवी की सेवा में प्रणाम स्वीकृति हो।

चित्रा—राजाधिराज और महादेवी की सेवा में प्रणाम स्वीकृत हो।

सुलेखा—राजाधिराज और महादेवी की सेवा में प्रणाम स्वीकृत हो।

रावण—राजाधिराज की सेवा में तुम्हारा अनुराग रहे। संवत्सरों तक तुम राजाधिराज और महादेवी की सेवा करती रहो। तुम्हारी महारानी सीता का शृङ्गार हुआ ? (देखकर) नहीं हुआ ! सौदामिनी शृङ्गार क्यों नहीं हुआ ? चित्रा, तुमने महारानी को सुसज्जित क्यों नहीं किया ? सुलेखा, तुमने पुष्पों की मालाओं और मोतियों से महारानी के केश क्यों नहीं सजाये ?

सौदामिनी—(नम्रता से) महारानी की इच्छा नहीं थी।

रावण—(दुहराते हुए) महारानी की इच्छा नहीं थी। (सोच-कर) हाँ, महारानी की इच्छा सर्वोपरि है। त्रैलोक्य-सुन्दरी महारानी सीता की इच्छा का आदर होना चाहिए ! अच्छा जाओ। तुम लोग महारानी सीता को प्रणाम कर यहाँ से जाओ।

तीनों—(सम्मिलित स्वर में) महारानी सीता को प्रणाम ।

(सीता कुछ उत्तर नहीं देती, दासियों का प्रस्थान)

रावण—प्रणाम का कुछ उत्तर नहीं दिया महारानी सीता ने ? (अट्टहास) ठीक है । कहाँ त्रैलोक्य की शोभा का शृङ्गार और कहाँ तुच्छ दासियाँ ! प्रणाम का उत्तर भी कैसे हाँ सकता है ? हाँ अगर महादेवी मन्दोदरी प्रणाम करें तो संभवतः उत्तर मिले । (मन्दोदरी की ओर देखकर) महादेवी मन्दोदरी !

मन्दोदरी—महारानी सीता को मन्दोदरी का प्रणाम ।

सीता—प्रभु राम अनाथो पर कृपा करें ।

(रावण मुक्त अट्टहास करता है ।)

रावण—यह निष्ठा देखी महादेवी मन्दोदरी ? एक तपस्वी के प्रति यह निष्ठा ! संसार में किसी नारी के पास ऐसी निष्ठा नहीं । मैं इसी निष्ठा से प्रभावित हूँ महारानी सीता ! किन्तु यह निष्ठा शृङ्गार के साथ नहीं है । आज तो शृङ्गार होना चाहिए था । आज के पुण्य पर्व में देवाधिदेव शंकर स्वयं आये थे, महादेवी मन्दोदरी, तुमने भगवान शंकर की लुवि देखी थी ?

मन्दोदरी—मैं तो आपकी और भगवान शंकर की लुवि में कुछ देर तक अंतर भी नहीं देख सकी । यदि उनके हाथ में त्रिशूल और आपके हाथ में चन्द्रहास न होता तो दोनों का स्वरूप एक ही था ।

(रावण अट्टहास करता है ।)

रावण—ठीक है, भक्त और भगवान में एकरूपता तो होनी ही चाहिए । किन्तु आज उनकी मुद्रा कुछ उदास थी । संभवतः इसलिए कि महारानी सीता ने शृङ्गार नहीं किया । (सीता जी से) महारानी, आपकी मलिनता का दोष देवाधिदेव शंकर को भी होता है । आपको आज शृङ्गार करना चाहिए ।

(सीता सिसकियाँ भरती हैं ।)

रावण—ये आँसू...! ये आँसू ! ये तो आपके सौंदर्य के अनुरूप नहीं हैं, महारानी सीता ? और आपके सिर पर केशों की एक ही वेणी, यह भैली साड़ी, ये भूमि पर गड़े हुए नेत्र, यह उदासी ? जैसे चन्द्र के साथ अन्धकार हो ! क्यों महादेवी ? चन्द्र के साथ अन्धकार कैसे निवास करता है ?

मन्दोदरी—चन्द्र के साथ नहीं, चन्द्र के भीतर अन्धकार निवास करता है, महाराज !

रावण—वह अंधकार नहीं है ? महादेवी, वह तो मेरा आतंक है जो चन्द्रमा सदैव अपने हृदय पर लिये फिरता है । संसार के लोग उसे कलंक कहते हैं । किन्तु वह चन्द्र के हृदय में राजाधिराज रावण का भय है, आतंक है । पर इस समय जाने दो इन बातों को, मुझे तो इन नेत्रों से त्रैलोक्य के सौंदर्य को देखना है, महारानी सीता ?.....

(सीता मौन रहती हैं ।)

रावण—आज सौंदर्य में वाणी नहीं है, पुष्प में सुगन्ध नहीं है, चन्द्रमा ने किरण नहीं है । मैंने सारे भूमण्डल का पर्यटन किया, स्वर्ग के देवताओं को जीता, पातालपुरी के नागों को अधीन किया, किन्तु ऐसा दिव्य सौंदर्य कहीं नहीं देखा ? अभी तक मैं ममभ्रता था कि मेरी महादेवी ही सौंदर्य की स्वामिनी हैं, किन्तु आज.....

मन्दोदरी—महाराज आप मुझे व्यर्थ आदर दे रहे हैं ।

रावण—तब तो महादेवी तुम्हें महारानी सीता की सेवा करनी चाहिए । (सीता जी से) मुनिए महारानी सता ! यदि आप एक बार भी मुझ पर कृपालु हो जायें तो मैं महादेवी मन्दोदरी से लेकर सभी गनियों को आपकी अनुचरी बना दूँगा । बोलिए, आप महादेवी मन्दोदरी की सेवा स्वीकार करेंगी ?

सीता—महादेवी मन्दोदरी मैं आप से केवल एक तृण चाहती हूँ ।

रावण—तृण ! केवण तृण ? क्यों ? किसलिए ! महादेवी इन्हें एक सोनं का तृण लाकर दो । महारानी उससे अपनी स्वीकृत लिखेंगी । साथ ही काले पत्थर की एक कसौटी भी । कसौटी पर वह स्वर्ण रेखा जैसे अंधकार पर सूर्य की किरण के समान होगी । वही महारानी की कृपा-स्वीकृति होगी !

सीता—नहीं महादेवी मैं केवल भूमि का तृण चाहती हूँ !

रावण—यह किसलिए ?

मन्दोदरी—मैं जानती हूँ महाराज, किसलिए । क्या महारानी सीता की इच्छा पूरी की जाय ?

रावण—उनकी इच्छा सर्वोपरि है । तृण को वे मेरे सामने रखकर ही बातें करें । मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं ।

मन्दोदरी—(तृण तोड़ कर देती है) यह लीजिए ।

सीता—(तृण लेते हुए) धन्यवाद महादेवी !

रावण—महारानी, मैं अपने प्रस्ताव की स्वीकृति चाहता हूँ ! मैं कब से महादेवी मन्दोदरी को आपकी मेवा में नियोजित कर दूँ ?

सीता—एक स्त्री का अपमान करने के बाद दूसरी स्त्री के अपमान करने का प्रस्ताव ! इस मूर्खता के सम्बन्ध में क्या कहूँ ! क्या वेदों का पाठ करने वाले पंडित के शान की यह विडम्बना नहीं है ?

रावण—महारानी सीता ! (तीव्र स्वर से) महाराज रावण का अपमान करने की शक्ति किसी में नहीं है ।

सीता—किस रावण का अपमान ? उस रावण का, जो प्रभु के दूर चले जाने पर मृग आश्रम से मुझे हरण कर लाया ? उस रावण का, जो संन्यासी का वेश रखकर आया और चोग बन कर गया ? उस रावण का, जो भिक्षा माँग कर संसार के समस्त भिक्षुओं

को लज्जित कर गया ? आज वही रावण अपने अपमान की बात कर रहा है ! उस रावण ने भिक्षुओं तक का अपमान किया है ।

मन्दोदरी—महारानी सीता, शान्त हों !

रावण—महादेवी मन्दोदरी, तुम रावण को शान्त नहीं करती ? आज पिल्लुले दस महीनों से वह तिल-तिल कर जल रहा है । उसने देवाधिदेव शंकर के दस महोत्सव किये हैं, दस बार प्रार्थनाएँ की हैं कि महारानी सीता मुझ पर अनुकूल हों, किन्तु न शंकर ने ही स्वीकृति दी और न महारानी सीता ने ही । मैंने दस महीनों से कुबेर की भेंट स्वीकार नहीं की, ब्रह्मा के कंठ से वेद-पाठ नहीं सुना, सूर्य को सभा में नहीं आने दिया, चन्द्रमा की अमृत-वाणी नहीं सुनी । सारे वैभव छोड़ दिये ! एक मात्र इसलिए कि महारानी सीता एक बार कृपापूर्वक मेरी ओर मुन्व करें; किन्तु आज तक मैं इस सुख से वंचित रहा । मैं कितना अशान्त हूँ, यह अग्नि की लपटों से पूछो, लंका की सीमा पर गर्जना करते हुए सागर से पूछो ! इसे तुम नहीं जान सकती, महादेवी !

मन्दोदरी—जानती हूँ महाराज, किन्तु यदि आपकी इच्छा पर सारे वैभव आपको छोड़ दें, ब्रह्मा, कुबेर, सूर्य और चन्द्र आपके दर्शन का वरदान न पावें, तो इसमें उनका क्या दोष ? दोष तो आपकी इच्छा का है ।

रावण—तुम भी सीता से सहानुभूति रखती हो महादेवी ? मेरे प्रताप की ओर से आँख बंद कर सीता को ही निर्भीक और निडर बनाती हो ?

सीता—महाराज राम के बल से कौन निर्भीक और निडर नहीं है ? उनके प्रताप के सामने तुम्हारा प्रताप क्या है ? क्या जुगानुओं का प्रकाश कभी सूर्य के प्रकाश को समानता कर सकता है और उस प्रकाश से क्या कभी कमलिनी खिल सकती है ? ऐसे व्यक्ति का प्रताप.....

रावण—(अट्टहास करते हुए) मेरा प्रताप ? महारानी सीता ! जिसके पुत्र ने सुरेश्वर इन्द्र को जीत कर इन्द्रजीत का नाम और यश

पाया है, उसके प्रताप के सम्बन्ध में आपको शंका है ? महादेवी, समझाओ सीता को कि मैं क्या हूँ ! त्रैलोक्य में मेरी शक्ति से लड़ने का साहस कितने हो सकता है ? जिसके हृदय में दंडी, मुंडो और जटाधारी निवास करते हैं उम निर्गुणी.....

सीता—(बीच ही में) चुप रह दुष्ट ? क्या तुम्हें लज्जा नहीं आती कि मुझे एकान्त में पाकर हरण करता है और अपनी शक्ति का आडम्बर मुझे दिखलाना चाहता है । अन्यायी भी कहीं शक्तिशाली हो सकता है, पापी कहीं भक्त हो सकता है; कायर भी कहीं शूरी हो सकता है ? जिसने अपनी सारी लज्जा खो दी है, वह अपने सम्मान की बात किस मुख से कह सकता है ? जिसके सामने मंन्यासी, चोर, भिक्तुक और कायर में अंतर नहीं है, वह रावण.....वह रावण प्रभु राम से...

रावण—(बीच ही में चिल्लाकर) सीता.....

सीता—(मन्दोदरी से) महादेवी ! आज मुझे जीवन के अन्तिम क्षण दीव्य रहे हैं । आप यहाँ से चली जायें तो अच्छा है ।

मन्दोदरी—(रावण से) महाराज ? नारी पर बल-प्रयोग करना अन्याय है ।

रावण—महादेवी, मैं तुमसे नीति की शिक्षा नहीं ले रहा हूँ । रावण भगवान शंकर को छोड़कर किसी को अपना गुरु नहीं मानता । यदि तुम्हारी इच्छा हो तो तुम यहाँ से जा सकती हो ।

मन्दोदरी—मैं महाराज को अन्याय करने से रोकूँगी ।

रावण—(तीव्रता से) मुझे न्याय या अन्याय करने से कौन रोक सकता है ?

सीता—भगवान राम के बाण ! जब वे तेरे सिरों को काटकर भगवान के निषंग में प्रवेश करेंगे तो महात्मा लक्ष्मण उनसे पूछेंगे कि अन्यायी के रक्त का स्वाद कैसा है, तब वे बाण.....

रावण—(बीच ही में क्रोध से) बाण नहीं, यह कृपाण ! देखो, यह

चन्द्रहास (तलवार निकालता है) मेरे अपमान करने वाले के शरीर में यही चन्द्रहास एक क्षण में चमककर मेरे सम्मान का आदर्श त्रैलोक्य में स्थापित करता है। यह चन्द्रहास—देखती हो ? इमने कितने अपराधियों के सिर काटकर सारे ब्रह्माण्ड में बिखरा दिये हैं। सिरों की तरह असंख्य तारों को बिखराकर दूज का चन्द्र चन्द्रहास का अभिनय करता है। देखो, इस तारों-मरी रात को और इस चन्द्रहास को। मेरी भौंह के संकेत पर न चलने वाले को चन्द्रहास की धार पर चलना पड़ता है।

सीता—(गहरी साँस लेकर) चन्द्रहास ! श्याम कमलों की माला के समान प्रभु की भुजा ! मेरे कंठ की यही शोभा है। या तो प्रभु की भुजा हो या यह चन्द्रहास हो। चन्द्रहास ! चन्द्र का शीतल हास प्रभु के विरह में उठी हुई ज्वाला को तू क्यों नहीं शान्त कर देता ? तेरी धार कितनी शीतल है, कितनी तीक्ष्ण है ? मेरे इस दुःख को दूर कर दे। तू अभी तक मृत्यु का दूत रहा है, मेरे लिए जीवन का देवदूत बन जा ?

रावण—(विल्लाकर) तब तैयार हो ! चन्द्रहास ! तुझे भी ऐसा शरीर न मिला होगा। तैयार हो। वायु को काटना हुआ आकाश में चन्द्रमा की तरह उठ जा और उल्कापात की तरह इस शरीर पर गिर.....

मन्दोदरी—(बीच में उठकर और विह्वल होकर) महाराज, महाराज, यह नहीं हो सकता ! पुरुष नारी का इस प्रकार वध करे ? यह नहीं हो सकता ! यह अन्याय है ! यह नहीं हो सकता ! पहले मेरा वध कीजिए...मेरा वध...मेरा वध...

सीता—(दुःख से) महादेवी, यह क्या ?...

मन्दोदरी—(शीघ्रता से) नहीं, नहीं, सीता ! (रावण से) महाराज, पहले मेरा वध कीजिए। यह अन्याय मैं अपने सामने नष्ट होने दूंगी। मैं आपको पाप में नहीं पड़ने दूंगी।

रावण—(जोर से सांस लेता हुआ स्वगत) अरे, यह क्या ? शंकर की भी स्वीकृति नहीं ! मेरा त्रिपुण्ड गीला हो गया ! उस त्रिपुण्ड पर भगवान शंकर के आँसू गिर पड़े ! प्रभु...प्रभु...मेरे शत्रु पर तुम्हारी इतनी करुणा क्यों ? तुम्हारी इतनी अनुकम्पा क्यों ? तुम कैसे मेरे भगवान हो ! भक्त की इच्छा के प्रतिकूल ! तुम्हारी तो कभी ऐसी बान नहीं थी ।...प्रभु शंकर ! मुझे बल दो कि मैं लड़ सकूँ ! चन्द्रहास से न सही तो अपनी नीति से ही लड़ सकूँ ! जिस प्रकार तुम मेरे सभी कार्यों में सहायक हो उस प्रकार इस कार्य में क्यों नहीं होते ? लेकिन मैं लड़ूँगा (प्रकट) महादेवी मन्दोदरी, तुम्हारे कहने से मैं इस माम भी सीता को छोड़ता हूँ । एक मास क्षमा की अवधि और रहेगी । मैं ग्यारहवाँ महोत्सव मनाऊँगा । ग्यारहों रुद्र उसके सान्नी होंगे और यदि उस उत्सव पर सीता न मेरा कहना नहीं माना तो फिर यही चन्द्रहास ! ...यही चन्द्रहास होगा और उसके सामने होगी सीता...सीता...यही सीता जो मेरे आराध्यदेव द्वारा भी बचायी जा रही है । कहाँ हो शंकर ? आज तुम्हारा भक्त अपमानित हो गया । (शीघ्रता से बाहर जाता है । बाहर जाते-जाते शब्द धीमे हो जाते हैं ।) इस अपमान का बदला... महाराजाधिराज रावण के अपमान...का...बदला...

मन्दोदरी—मैं भी जा रही हूँ महारानी सीता ! पतिदेव रुष्ट हो गये । यह त्रिजटा दासी तुम्हारे समीप रहेगी ।

(मन्दोदरी जाती है और सीता फिर एक बार सिसुकी भरती है ।)

सीता—(चिन्तित स्वरों में) एक मास और...ग्यारहवाँ उत्सव ...ग्यारह रुद्रों की सान्नी...क्यों नहीं आज ही उस दुष्ट ने मुझे इस विरह-दुःख से मुक्त कर दिया ? एक मास और...कैसे सहूँ ! प्रभु के विरह में एक-एक दिन युग के समान बीत रहा है । उस पर अभी एक मास की लम्बी अवधि और है । (सिसुकी लेकर) प्रभु, अब मैं जीवित नहीं रहूँगी । मैं जीवित नहीं रहना चाहती ! तुम्हारी होकर तुमसे इतनी

दूर हूँ, एक-एक क्षण मुझे चन्द्रहास की धार से भी अधिक तीक्ष्ण ज्ञात होता है। हाय मेरा जीवन नष्ट क्यों नहीं हो जाता? मेरे ही कारण मेरे प्रभु को व्यंग्य मुनने पड़ते हैं। संसार देख रहा है कि मैं प्रभु की हूँ और प्रभु अभी तक नहीं आये। मैं कितनी अभागिनी.....

(सिसकियाँ)

त्रिजटा—महारानी, आप दुःख न करें। आपकी सेवा के लिए मैं तैयार हूँ। मैं त्रिजटा हूँ। आपकी आज्ञाकारिणी सेविका—

सीता—(विह्वल होकर) त्रिजटा, तुम मेरी सेवा करोगी तो यही सेवा करो कि लकड़ियाँ लाकर मेरे लिए चिता बना दो और उसमें आग लगा दो। अब प्रभु राम का यह विरह मुझे सहन नहीं होता। राम के विरह की ज्वाला से चिता की ज्वाला शीतल होगी। मैं कहाँ तक दुष्ट रावण के दुर्वचन सुनूँ। मैं प्रभु राम के शत्रु को अपनी आँखों के सामने कैसे देखूँ! मेरे प्रेम को सार्थक करो और मुझे चिता में जल जाने दो। मैं अपने हृदय की वेदना कैसे कहूँ?

त्रिजटा—महारानी, आप इतनी दुखी क्यों होती हैं? प्रभु राम आपका उद्धार अवश्य करेंगे।

सीता—(चौंककर) क्या कहा? फिर से कहो, देवी, फिर से कहो—प्रभु राम...प्रभु राम...

त्रिजटा—हाँ, हाँ, प्रभु राम आपका उद्धार अवश्य करेंगे। आपने ही तो कहा था कि प्रभु राम के बाण...

सीता—(विह्वल होकर) हाँ, हाँ, कहती जाओ, देवी कहती जाओ...मैं प्रभु की बात सुनना चाहती हूँ।

त्रिजटा—यही तो आपने कहा था कि भगवान राम के बाण जब रावण के सिरों को काटकर भगवान के निषंग में प्रवेश करेंगे तो महात्मा लक्ष्मण उनसे पूछेंगे कि अन्यायी के रक्त का स्वाद कैसा है?

सीता—किन्तु यह कब होगा, देवी त्रिजटा?

त्रिजटा—भगवान राम की कृपा होने में विलम्ब नहीं लगता ।

सीता—मच है देवी, किन्तु याद एक मास से अधिक विलम्ब हुआ तो दुष्ट गवण मुझे मार डालेगा । मे प्रभु के दर्शन भी न कर पाऊँगी, इसमें अच्छा तो यही है कि तुम मुझे अभी ही चिन्ता में जल जाने दो ।

त्रिजटा यह सम्भव नहीं है महारानी, फिर रात आधी से अधिक व्यतीत हो गयी है । अब किसके घर आग मिलेगी ? सभी लोग भोजन कर सो गये होंगे ।

सीता—(आह भरकर) आह, यह भी सम्भव नहीं ! फिर सहू प्रति दिन की तीक्ष्ण वाते, रात दिन, दिन रात ।

त्रिजटा—देवी सीता, आप धैर्य रखें ! मैंने एक स्वप्न देखा है कि आप का उद्धार होगा !

सीता—देवी, आप के वचनों में मुझे धैर्य मिलता है, क्योंकि आप भी प्रभु राम के चरणों में प्रेम रखती हैं ।

त्रिजटा—मे किस योग्य हूँ महारानी कि प्रभु राम के चरणों में प्रेम रख सकूँ ! यदि मरे सिर की जटाओं में आजन्म राम-नाम की—नाम के अक्षरों की—ग आ और म रेखाएँ बनी रहें, तो इससे बड़ा सौभाग्य मेरा क्या होगा ?

सीता—मरे विपत्ति की सहायिका देवी, तुम धन्य हो !

त्रिजटा—धन्य तो मैं तब होऊँगी जब महारानी, आप का उद्धार हो जायगा और मुझे विश्वास है कि दुर्भाग्य के बादल प्रभु की कृपा की किरणों को नहीं रोक सकते ।

सीता—तुम्हारा विश्वास अमर रहे !

त्रिजटा—अच्छा महारानी, अब आप विश्राम कीजिए । रात थोड़ी ही रह गयी है । अब मैं जाऊँगी । आप सो जाइए ।

सीता—मैं क्या सोऊँगी ! मेरी शय्या पर तो दुर्भाग्य ने काँटे बिछा दिये हैं, किन्तु तुम जाओ, तुम सोओ ।

त्रिजटा—प्रणाम करती हूँ, महारानी !

सीता—प्रभु राम अनार्यों पर कृपा करें ।

(त्रिजटा का प्रस्थान)

सीता—(गहरी साँस लेकर) यह महायिका भी चली गयी । विधाता मेरे कितना प्रतिकूल है । माँगने से आग भी नहीं मिलती, जिससे मैं जिता में जल जाऊँ । मेरे हृदय की आग ही बाहर निकल आये तो मैं अपने को धन्य समझूँ । मैं अपना शरीर जलाना चाहती हूँ; किन्तु मन ही जलकर रह जाता है ! (कुछ देर ठहरकर) गत आधी से अधिक बीत चुकी है ! सब लोग सो रहे हैं । साँसों के आने-जाने का शब्द सुनायी पड़ रहा है ।...मैं क्या करूँ ? भगवान राम न जाने कहाँ होंगे । किस वृक्ष के नीचे बैठकर मेरे विरह में दुखी होते होंगे । कंचनमृग का चर्म लाने का आग्रह करने से पहले मैंने उन्हें माला गूँथकर पहनायी थी । वह इस समय भी उनके गले में पड़ी होगी, उसके फूल मेरी ही तरह मुग्धा गये होंगे, किन्तु फूल मुझसे अधिक भाग्यशाली हैं, क्योंकि मुग्धानं पग भी वे प्रभु राम के हृदय में लगे हुए हैं और मैं यहाँ मुग्धायी हुई दुष्ट रावण को अशोक वाटिका में हूँ । (सिसकी भरती हैं) प्रभु राम मुझे ज़मा करो ! मैंने कंचनमृग का चर्म ही क्यों माँगा ? तुमने मृग की ओर देखकर अपना परिकर बाँधा, दाथ में धनुष सँभालकर तीक्ष्ण बाण की नोक को गहरी दृष्टि से पख्या । बाण की ओर देखते हुए तुमने लक्ष्मण को रक्षा का भार सौंपा और तीव्र गति से कंचनमृग के पीछे दौड़ पड़े.....संसार जिनके पीछे दौड़ता है, वे मेरे प्रभु कंचनमृग के पीछे दौड़े...मेरे कारण...ओह प्रभु ! तुम कैसे हो और मैं कैसी हूँ ! आज मेरा कष्ट कंचनमृग बन जाता और तुम उसके पीछे दौड़ते ! वह कष्ट मैं कैसे सहूँ ? लक्ष्मण, तुम्हारा कुछ दोष नहीं । तुम कुटी से चले गये । मुझे ज़मा करो । प्रभु को समझा दो कि सारा दोष सीता का है । इसलिए आज मेरे समीप कोई नहीं है । (पेड़ के पत्तों के हिलने

का शब्द) वायु बहकर निकल जाती है, एक क्षण रुककर मेरा संदेसा प्रभु के पास नहीं ले जाती। आकाश में इतने अंगारे फैले हुए हैं, इनमें से कोई भी तो नीचे गिर जाता ! यह चन्द्रमा भी ज्वालाओं से जल रहा है। वह एक लपट नीचे की ओर फेंक दे तो मैं उस आग में जल जाऊँ। क्या मैं इतनी अभिमानी हूँ कि चन्द्रमा की एक लपट भी पाने की आधिकारी नहीं ? वृक्ष अशोक ! तुम्हीं मुझ पर दया करो। अपने नाम को सार्थक करते हुए मुझे अशोक बना दो, मेरा शोक दूर कर दो। तुम्हारे नये-नये पत्ते आग की तरह लाल हैं। इन्हीं से अग्नि-कण बरसा कर शरीर का अन्त कर दो। प्रभु राम ! तुम्हारे विग्रह में जलकर भी आज मैं जीवित हूँ। मेरे जीवन को...धिवकार...है...

[सिसकती हैं, इसी समय श्री हनुमान जी अशोक वृक्ष से श्री राम की मुद्रिका नीचे गिरा देते हैं। मुद्रिका के गिरने का शब्द होता है।]

सीता—(चौंकर) यह कैसा शब्द ? क्या आकाश से कोई तारा गिरा, या अशोक वृक्ष ने मेरे जलने के लिए अंगार डाल दिया है...? (देखकर) वैसी ही तो कुछ चमक है। देखूँ, (सीता जी उठकर मुद्रिका उठाती हैं) यह क्या ? यह तो मुद्रिका है ! यह मुद्रिका किसकी है...? अरे इस पर तो राम-नाम अंकित है ! ओह, यह मुद्रिका तो प्रभु राम की है...? किन्तु यह यहाँ कैसे ? यह यहाँ कैसे आयी ? इसे कौन लाया ? यह तो श्री राम के हाथों में मैंने पहनायी थी। उनसे कभी एक क्षण दूर नहीं हुई। फिर यह मुद्रिका यहाँ कैसे...? प्रभु राम, तुम कहाँ हो ? किसी शत्रु ने तो...नहीं-नहीं, यह नहीं हो सकता, यह नहीं हो सकता। भगवान राम को कौन जीत सकता ? वे तो अजेय हैं, फिर यह मुद्रिका.....मुझे छलने के लिए किसी ने माया से तो यह नहीं बना ली ? किन्तु माया से, त्रिभुवन की माया से यह बनायी भी कैसे जा सकती है ? नहीं-नहीं, यह मुद्रिका उन्हीं की है। मेरे प्रभु राम की

है। मुद्रिके बोल, तू यहाँ कैसे आयी? श्री राम और लक्ष्मण कुशल-पूर्वक तो हैं? तूने राम को कैसे छोड़ दिया? ओह, मेरे राम को सब छोड़ देते हैं! नगर से चलते समय नगर-लक्ष्मी ने उन्हें छोड़ दिया, वन के बीच में मैंने उन्हें छोड़ दिया और अब मेरी दिशा के मार्ग में तूने उन्हें छोड़ दिया! अब आज से नारियो पर कौन विश्वास करेगा? मेरे राम की मुद्रिका...

[श्री सीता जी सिसकियाँ लेती हैं, इसी में अशोक वृक्ष पर से श्री हनुमान के शब्द :]

हनुमान—रघुकुल-मणि रामचन्द्र, दशरथ-सुत रामचन्द्र, सीता-पति रामचन्द्र, वानर-प्रिय रामचन्द्र !

सीता—(आश्चर्य से चौककर) यह कौन ?

हनुमान—श्री रामचन्द्र के चरण-स्पर्श से अहल्या पवित्र हो गयी, श्री रामचन्द्र के हाथों से शिव-धनुष तिनके के समान टूट गया, श्री रामचन्द्र की कृपा से चित्रकूट भी साकेत बन गया, श्री रामचन्द्र की शक्ति से खरदूषण का विनाश हुआ, श्री रामचन्द्र की भक्त-वत्सलता से जटायु ने परम गति प्राप्त की, श्री रामचन्द्र के अनुग्रह से सुग्रीव ने अपना खोया हुआ राज्य प्राप्त किया और श्री रामचन्द्र की कृपा से मुझे उनके चरणों की भक्ति...!

(कंठ गद्गद् हो जाता है ।)

सीता—जिसने मेरे कानों में इस अमृत-वाणी की वर्षा की है वह मेरे सामने प्रकट हो ।

[अशोक वृक्ष से कूदकर श्री हनुमान श्री सीता जी के सामने आते हैं और प्रणाम करते हैं, श्री सीता जी आश्चर्य-चकित हो मुख फेरकर बैठ जाती हैं ।]

हनुमान—मातुश्री सीता ! मेरा सादर प्रणाम स्वीकार हो । मैं करुणानिधान श्री राम की शपथ लेकर कहता हूँ कि मैं श्री राम का व्रत

हनुमान हूँ। आप मुझसे मुख फेरकर न बैठें। मैं पुत्र की भाँति आपके दर्शन करना चाहता हूँ, मैं ही यह मुद्रिका लाया हूँ। प्रभु राम ने मुझे आपकी सेवा में भेजा है, आप मुझे श्री राम-दूत मान लें, इसीलिए उन्होंने मुझे यह मुद्रिका देने की कृपा की।

सीता—नर और वानर का साथ कैसे सम्भव है ?

हनुमान—मातुश्री ! दुष्ट रावण ने जब आपका हरण किया तो आपने अपने कुछ वस्त्र और आभूषण नीचे फेंक दिये थे। वे वानरराज सुग्रीव को प्राप्त हुए। मैं वानरराज सुग्रीव का सहायक हूँ। जब लक्ष्मण सहित श्री राम आपको खोजते हुए उस स्थान पर आये तो दोनों में मित्रता हुई। सुग्रीव को रक्षा के लिए श्री राम ने उसके भाई, बालि का बध किया, फिर सुग्रीव की सहायता से श्री राम ने आपकी खोज में असंख्य वानर भेजे। मैं राम-दूत हनुमान हूँ, मातुश्री।

सीता—तुम्हारे वचनों पर मुझे विश्वास होता है। तुम मन, वचन और कर्म से प्रभु राम के दास हो। कहो, मेरे प्रभु राम कैसे हैं, और वीर लक्ष्मण कैसे हैं ? मेरे प्रभु तो इतने कोमल हृदय वाले हैं, कङ्कणा-सिंधु हैं, उन्होंने कैसे इतनी निष्ठुरता की कि अभी तक नहीं आये ? क्या कभी वे मेरा स्मरण करते हैं ? उन्होंने मुझे विलकुल ही भुला दिया ? हाय, उन्होंने मुझे विलकुल ही भुला दिया !

हनुमान—नहीं मातुश्री, वे आपको कभी नहीं भूल सके, वे तो आपका सदैव स्मरण करते हैं। वे सब तरह से कुशल हैं, यदि उन्हें दुःख है तो केवल आपका ही दुःख है। वीर लक्ष्मण भी सकुशल हैं। आप किसी प्रकार की चिन्ता न करें। आपके प्रति प्रभु राम के हृदय में जो प्रेम है उसकी थाह नहीं ली जा सकती ?

सीता—क्या कभी मेरे नेत्र उनके सुन्दर श्याम शरीर को देख कर शीतल होंगे ? ओह मैं कितनी अभगिनी हूँ।

हनुमान—मातुश्री, प्रभु राम जिनका स्मरण करते हैं, उनके

लिए अभाय कैसा ? दुष्ट रावण का मिर काटने के लिए श्री राम के तरकरा में बाण कसकने लगे हैं । श्री राम ने इस दिशा में प्रस्थान कर दिया है । शीघ्र ही यह दुःख का अंधकार दूर होगा । प्रभु राम की कृपा का सूर्य उदय हो चला है, आप कुछ दिन और धैर्य धारण करें, कपि-सेना के साथ श्री राम यहाँ आवेंगे और रावण को मारकर आपका उद्धार करेंगे ।

सीता—(आनन्द-विह्वल होकर) श्री राम मेरा उद्धार करेंगे ! मेरा उद्धार करेंगे ? ओह, आज मैं कितनी सुखी हूँ ! प्रभु राम, आज मैं तुम्हारे आने के समाचार से कितनी सुखी हूँ ?

[उसी समय प्रभात का मंगल वाद्य और समय की सूचना बजती है ।]

सीता—(प्रसन्नता से) प्रभात की इस मंगल बेला में, प्रभात की इस मंगल ध्वनि में, मेरी मंगल कामना सफल हो...? मेरे प्रभु राम की जय हो !

(मंगल वाद्य बजते-बजते वायु में लीन हो जाता है ।)

[पर्दा]

उदयशंकर भट्ट

१९३८ में 'हंस' के एकांकी नाटक श्रंक के साथ जो एकांकीकार इस क्षेत्र में आये हैं, भट्ट जी उनमें अग्रणी हैं। पहले भट्ट जी बड़े नाटक लिखा करते थे। उनका प्रथम एकांकी 'दस हज़ार' था, जो 'हंस' के एकांकी श्रंक में छपा। उसके बाद, यद्यपि भट्ट जी बड़े नाटक लिखते रहे, उन्होंने एकांकी का दामन नहीं छोड़ा। इधर कुछ वर्षों से उनकी लेखनी से एक से बढ़कर एक सुन्दर एकांकी आ रहे हैं और उनकी कला प्रौढ़ और पुष्ट होती जा रही है। जैसा कि डॉ० रामकुमार वर्मा ने लिखा है :—“भट्ट जी के एकांकियों में मनोभाव सरलता से स्पष्ट हो जाते हैं। पात्रों के अनुरूप भाषा की सृष्टि में तो वे सिद्धहस्त हैं, घटनाओं में कौतूहल चाहे न हो, किन्तु स्वाभाविकता के साथ जीवन के चित्रों को स्पष्ट करने में भट्ट जी ने विशेष सफलता प्राप्त की है।”

‘बोमार का इलाज’ इस कथन का प्रमाण है। विनोद की बोमारी की अति साधारण घटना को लेकर भट्ट जी ने जिस सीधे-साधे ढंग से एक परिवार के विभिन्न प्राणियों, उनकी शिक्षा और संस्कारों का चित्रण किया है वह न केवल दिलवस्प और सुन्दर है, वरन् यथार्थ भी। यह एकांकी प्रहसन है और हल्की-सी अतिरंजना इसकी यथार्थता को कम न करके बढ़ाती ही है। डॉक्टर का अन्तिम वाक्य जैसे हमारे ही अन्तर से निकला प्रतीत होता है, और केवल व्यंग्य को तीखा घर देता है वरन् प्रहसन को सोद्देय बना देता है।

रचनाएँ

एकांकी संग्रह :—समस्या का अन्त; चार एकांकी नाटक; अभिनव एकांकी;
अस्तोदय; पर्दे के पीछे ।

नाटक :—सगर विजय; तीन नाटक; बाहर; विक्रमादित्य; मुक्तिपथ;
अम्बा; मत्स्यगंधा; विश्वमित्र; राधा ।

कविता :—तक्षशिला; राका; मानसी; विसर्जन; अमृत और
विष ।

उपन्यास :—वह जो मैंने देखा; नये मोड़; सागर लहरें और मनुष्य ।

बीमार का इलाज

पात्र

- चन्द्रकांत : आगरे का एक रईस, जो अंग्रेज़ी सभ्यता व रहन-सहन का प्रेमी है। एकदम भारी-भरकम, उम्र ४५ वर्ष।
- कांति : चन्द्रकांत का बड़ा पुत्र। उम्र लगभग २१-२२ वर्ष।
- विनोद : कांति का समवयस्क मित्र।
- शांति : कांति का छोटा भाई।
- सरस्वती : कांति की माँ—अपने पति से सर्वथा भिन्न—दुबली-पतली, पुराने विचारों की।
- प्रतिमा : कांति की बहन—एकदम मोटी, उम्र २४ वर्ष।

डॉ० गुप्ता, डॉ० नानकचन्द, वैद्य हरिचंद, बूढ़ा नौकर, सुखिया, पंडित, पुजारी इत्यादि।

[आंगरे में कांति के पिता मि० चन्द्रकांत की कोठी का एक कमरा । कमरे की सजावट एक सम्पन्न परिवार के अनुरूप है । सोफा सेट, कुर्सियाँ, तिपाई इत्यादि सभी वस्तुएँ मौजूद हैं, पर नौकर पर निर्भर रहने तथा रुढ़िवादी गृह-स्वामिनी के कारण स्वच्छता और सलीके का अभाव है । दरों पर बिछी हुई चादर काफ़ी मैली है । जिस समय का यह दृश्य दिखाया जा रहा है, उस समय सवेरे के आठ बजे हैं । कांति का मित्र विनोद बिस्तर पर लेटा है । उसे अचानक रात में ज्वर हो गया, लगभग १०४ डिग्री । कड़ी काठी होने के कारण वह लापरवाही से कभी उठकर बैठ जाता है और कभी उठकर टहलने लगता है । वह अपने भीतर से यह विचार निकाल देना चाहता है कि उसे ज्वर है । फिर भी ज्वर की तेज़ी उसे बेचैन कर देती है और वह लेट जाता है । कुछ देर बाद कांति 'नाइट ड्रेस' में कन्धे पर तौलिया डाले, चपलियाँ फटफटाता, सीटी बजाता, बायें दरवाज़े से कमरे में आता है ।]

कांति—हलो विनोद, अमाँ अभी तक चारपाई से चिपटे हो — आठ बज रहे हैं । क्या भूल गये, आज गाँव जाना है ? मै तो स्वयं देर से उठा, वरना मुझे अब तक तैयार हो जाना चाहिए था । लेकिन तुमने तो कुम्भकर्ण के चाचा को भी मात कर दिया यार ! (पास जाकर) क्या बात है ? खैर तो है ?

विनोद—रात न जाने क्यों बुखार हो गया (हाथ फैलाकर) देखो !

कांति—(बेह छूकर) ओह, सारी देह अंगारे की तरह दहक रही है ।

विनोद—कम्बख़्त बुखार कैसे बेमौके आ धमका ?

कांति—यार, इस बुखार ने तो सारा मज़ा किरकिरा कर दिया । इलाहाबाद से मैं तुम्हें कितने आग्रह से छुट्टियाँ बिताने के लिए यहाँ आंगरे लाया था—सोचा था, कुछ दिन यहाँ घर में आनन्द-

मोज करेंगे और फिर खूब गाँव की सैर करेंगे।

विनोद—मालूम होता है, मेरे भाग्य में गाँव की सैर नहीं लिखी है। ये छुट्टियाँ बेकार ही गयीं।

कांति—गाँव का रास्ता बड़ा ऊबड़-खाबड़ है। इस दशा में तुम्हारा गाँव जाना असम्भव है। सोचता हूँ, मैं भी न जाऊँ; पर जाये बिना काम भी तो नहीं चलेगा। कल चाचा जी शायद मुकदमे के लिये बाहर चले जायेंगे; न जाने कब तक लौटें? कहो तो मैं अकेला ही हो आऊँ—इफ यू डोन्ट माइण्ड* !

विनोद—नही, नहीं, तुम हो आओ। उन्होंने आग्रह करके बुलाया है, हो आओ। मैं ठीक हो जाऊँगा। कोई बात नहीं!

कांति—तुम्हें कोई तकलीफ़ न होगी। डाक्टर आ जायगा। पिता-माता सभी तो हैं, मैं शाम को ही लौटने का यत्न करूँगा।

विनोद—नहीं, नहीं, मामूली बुखार है, ठीक हो जायगा। जाओ।

(कांति के पिता चन्द्रकांत का प्रवेश)

चन्द्रकांत—(दूर से) किस को बुखार है बेटा कांति? अरे इतनी देर हो गयी, तुम अभी तक गाँव नहीं गये! धूप हो जायगी। धूप, धूल और धुआँ इनमें तीन न सही, दो ही आदमी के प्राण निकालने को काफी हैं। उस पर घोड़े की सवारी—न कूदते बने, न सीधे बैठते। बुखार किसे हो गया बेटा।

कांति—बाबू जी, विनोद को रात बुखार हो गया। देह तबे की तरह गरम है। डॉक्टर को बुलाना है। ऐसे में इसका जाना...

चन्द्रकांत—हैं हैं, विनोद कैसे जा सकता है! और फ़ीवर, जंगल में आग की तरह उद्दण्ड! अभी डॉक्टर को बुला कर दिखा देना होगा। मैंने निश्चय कर लिया है, डॉक्टर भटनागर इस घर में

* यदि तुम बुरा न मानो !

कदम नहीं रख सकता । उसने प्रतिमा का केस खराब कर दिया था ।
बुखार उससे उतरता ही न था । वह एकदम निकम्मा सिद्ध हुआ ।
वैसे पूछो तो उस विचारे का कसूर भी नहीं था, दवा तो उसने एक-से-
एक बढ़िया दी, पर इससे क्या, बुखार तो नहीं उतरा । टाइफाइड से
छोड़कर चाहे उसका बाप ही क्यों न हो, उसे कुछ-न-कुछ तो उतरना
ही चाहिए । डॉक्टर गुप्ता ने आते ही उतार दिया । अब तो गुप्ता ही
मेरे फ्रैमिली डॉक्टर हैं । गुप्ता को बुलाओ ! मुखिया, ओ मुखिया, जा
ज़रा डॉक्टर गुप्ता को तो बुला ला ! कहना—वह कांति के मित्र हैं न,
जो प्रयाग से आये हैं, उन्हें बुखार आ गया है; ज़रा चलकर देख
लीजिए, बाबू जी ने कहा है । बेटा मान गया मैं तो.....

कांति—डॉ० भटनागर में मेरा 'फेथ' कभी नहीं रहा बाबू जी,
लेकिन डॉ० नानकचन्द भी कम नहीं हैं । विनोद को उसे ही दिखाना
ठीक होगा । न जाने उसके हाथ में कैसा जादू है । मेरा तो दिन-पर-दिन
'होमियोपैथी' में विश्वास बढ़ता जा रहा है ।

चन्द्रकांत—(कमरे में टहलते हुए) मेरे बच्चे, तुम पढ़-लिखकर
भी नासमझ ही रहे । बिना अनुभव के समझदार और बच्चे में अंतर
ही क्या है । अरे होमियोपैथी भी कोई इलाज है ! चाकलेट या मीठी
गोलियाँ न दीं, होमियोपैथिक दवा दे दी ! याद रखो, बड़ों की बात
गाँठ बाँध लो—जब इलाज करो, ऐलोपैथिक डॉक्टर का इलाज करो ।
'कड़वी भेषज त्रिन पिये, मिटे न तन को ताप' । ये बाल धूप में सफ़ेद
नहीं हुए हैं । कहते क्यों नहीं विनोद बेटा ?

विनोद—जी !

(करवट बदल लेता है ।)

चन्द्रकांत—ये वैद्य-हकीम क्या जानें, हर्-बहेड़ा और शरबत शोरबे
के पंडित !

कांति—मैं चाहता हूँ आप इस मामले में.....

चन्द्रकांत—नहीं, यह नहीं हो सकेगा । मैं जानता हूँ विनोद का भला इसी में है ।

(सुखिया का प्रवेश)

सुखिया—सरकार वो बाबू आये हैं ।

चन्द्रकांत—अबे कौन बाबू, नाम भी बतायेगा या यों ही.....

सुखिया—वही जो उम दिन रात को आये थे ।

चन्द्रकांत—लो और सुनो, गधों से पाला पड़ा है ।

सुखिया—वह बाबू सरकार.....

चन्द्रकांत—कह दे, आता हूँ । और मैंने तुम्हे डॉक्टर के पास भेजा था । जल्दी जा ।

(स्वयं भी चले जाते हैं ।)

कांति—तुम घबराना मत । मैं डॉक्टर नानकचन्द को बुलाकर लाऊँगा । मेरा खयाल है, शाम तक बुखार उतर जायगा । अच्छा विनोद, देर हो रही है, चलें । अभी मुझे बाथ-रूम भी जाना है ।

विनोद—हाँ, हाँ, तुम जाओ । मैंने बुखार को कभी परवाह नहीं की है कांति । उतर जायगा अपने-आप । शाम तक लौटने की कोशिश करना ।

कांति—अवश्य, अवश्य, तुम्हारे बिना मेरा मन भी क्या लगेगा । लेकिन जाना ज़रूरी है । अच्छा, विश यू स्पीडी रिकवरी !*

(सीटी बजाता चला जाता है ।)

विनोद—नमस्कार ।

[करवट बदल कर लेट जाता है । कांति की माँ सरस्वती का प्रवेश]

सरस्वती—(कमरे में घुसते ही) विनोद, क्या बात है ? उठो चाय-वाय तैयार है । कुछ खाओ-पिओ । (पास जाकर) क्या बात है,

* तुम्हारे जल्दी स्वस्थ होने की प्रार्थना करता हूँ ।

खैर तो है ? कुछ तबियत खराब है क्या ? (पलंग के पास जाकर विनोद को छूकर) हाय-हाय देखो तो कितना बुखार है ! मुँह ईगुर-सा लाल हो रिया है बिचारे का—बबराओ मत बेटा, मैं अभी वैद हरिचन्द को बुलाती हूँ । देखकर दवा दे जायेंगे—बड़े काबिल वैद हैं, विनोद । ज़रा कपड़ा ओढ़ लो न । (उड़ाती है) जैसा कांति वैसा हो तू । मेरे लेखे तो दोनों एक हो । क्या सिर में कुछ दर्द है ? (हाथ फेरकर) कब्जी होगी । अभी ठीक हो जायगी । सुखिया, ओ सुखिया । न जाने कहाँ मर गया । इन नौकरों के मारे तो नाक में दम दो गया है । अरे शांति, ओ शांति (शांति आता है) देख तो बेटा, जा हरिचन्द वैद को बुला ला । देखकर दवा दे जायेंगे । भइया वैद हो तो ऐसा हो...

विनोद—माता जी, बाबू जी ने डॉक्टर गुप्ता को बुलाया है । शायद कांति ने डॉक्टर नानकचन्द के लिए कहा है ।

सरस्वती—लो और मुनो, इनके मारे भी मेरा नाक में दम है । उस मरे डॉक्टर को न कुछ आवे है, न जावे है । न जाने क्यों डॉक्टर गुप्ता के पीछे पड़ रहे होंगे । क्या नाम है उस मरे भटनागर का ? इन दोनों ने तो छोरी को मार ही डाला था । वह तो कहो, भला हो इन वैद जी का, बचा लिया । जा बेटा शांति, जा तो सही जल्दी ।

शांति—जाऊँ हूँ माँ ।

(चला जाता है ।)

सरस्वती—अरी प्रतिमा, ओ प्रतिमा (दूर से आवाज़ आती है— 'हाँ माँ, क्या है ?') देख ज़रा मन्दिर में पण्डित जी पूजा कर रहे हैं । उनसे कहियो, ज़रा इधर होते जायें । और देख, उनसे कहियो, मार्जन का जल लेते आवें, विनोद भइया बीमार हैं । मैंने घर में ही मन्दिर बनवाया है बेटा !

विनोद—(उत्सुकता से करबट बदलकर) पण्डित जी का क्या होगा यहाँ माँ ?

सरस्वती—बेटा, ज़रा मार्जन कर देंगे। अपने वो पण्डित जी रोज पूजा करने आवें हैं। मार्जन कर देंगे। सारी अला-बला दूर हो जायगी। तुम पढ़े-लिखे लोग मानो या न मानो, पर मैं तो मानूँ हूँगी भइया ! पिछले दिनों प्रतिमा बीमार थी। समझ लो पण्डित जी के मार्जन से हो अच्छी हुई। मैंने कथा में एक बार सुना था—बुखार-उखार तो नाम के हैं, असली तो यह ग्रह-भूत ही हैं जो बुखार बनकर आ जायें होंगे। सिर दबा दूँ, क्या बेटा ? जैसे कांति वैसे तुम। तब तक न हो थोड़ा-सा दूध पी लो। अरी मिसरानी ओ मिसरानी ! (दूर से आवाज़ 'आयी बहू जी') अरी देख, थोड़ा दूध तो गरमाकर लाइयो।

विनोद—दूध तो मैं नहीं पीऊँगा माताजी।

सरस्वती—(चिल्लाकर) अच्छा रहने दे। (विनोद से) क्या हर्ज है, थोड़ी देर बाद सही। ज़रा ओढ़ लो, मैं अभी आयी। (जैसे ही जाने लगती है, वैसे ही मार्जन का जल, दूर्वा लेकर पण्डित जी कमरे में आते हैं। सरस्वती पण्डित जी से) देखो पण्डित जी, तुम्हारी पूजा से प्रतिमा जी उठी थी। याद है न ? ये मेरे कान्ति का मित्र है। देखो एक साथ पढ़े हैं। तुम्हें नहीं मालूम आजकल वह आया है न ! चाचा ने बुलाया है, आज गाँव जा रिया है। विनोद भी जा रिया था, पर इस बिचारे को बुखार आ गया है। ज़रा मंत्र पढ़कर मार्जन कर दो।

पण्डित जी—क्यों नहीं बहू जी, मन्त्र का बड़ा प्रभाव है। पुराने समयों में दवा-दारू कौन करे था। बस, मन्त्राभिसिक्त जल से मार्जन करा, कि बीमारी गयी। तुम तो बीमारी की कहो हो, यहाँ तो मरे जी उठते थे मरे, जिनके जीने का कोई सवाल ही नहीं उठे था (आँखें मटककर) हाँ, ऐसा था मन्त्र का प्रभाव।

सरस्वती—सच कहो पण्डित जी, ज़रा कर तो दो मार्जन। वैसे मैंने अपने उन वैद जी को भी बुलाया है। शांति गया है बुलाने।

पण्डित जी—तभी, तभी, मैं भी कहूँ आज शांति बाबू नहीं दिखायी

दिये। ठीक है, एक शत्रु पर जब दो पिल पड़ें तो वह कैसे बचकर जायगा। अच्छा, ये कांति बाबू के दोस्त हैं! अच्छा है भइया, खुश रहो, खूब पढ़ो-लिखो, धर्म में श्रद्धा रखो—हम तो ये कहे हैं। क्यों बहू जी?

सरस्वती—हाँ और क्या, पर आजकल के ये पढ़े-लिखे कुछ मानें तब न? तुम्हारे उन्हीं को देख लो, कुछ दिनों से डॉक्टरों के चक्कर में पड़े हैं। मैं कहूँ हूँ, अपने बुजुर्गों की दवाइयाँ क्यों छोड़ी जायँ? जब ये डॉक्टर नहीं थे, तब क्या कोई अच्छा नहीं होवे था? सभी ठीक होयँ थे। अब न जाने कैसा जमाना आ रिया है।

परिडत जी—जमाना बड़ा खराब है बहू जी! देवता, ब्राह्मण और गौ पर तो जैसे श्रद्धा ही न रही।

सरस्वती—अच्छा परिडत जी, मार्जन कर दो, मैं अभी आयी।

[चली जाती है। परिडत मंत्र पढ़कर विनोद के ऊपर बार-बार जल छिड़कता है, इसी समय डॉक्टर को लेकर चन्द्रकांत प्रवेश करते हैं।]

चन्द्रकांत—हैं हैं, अरे क्या हो रहा है? (पास जाकर) बस कर करो, ब्राह्मण देवता, बस करो, (जोर से) अरे, तुम क्या समझते हो इसे भूत है? रहने दो। न जाने इन औरतों को कब बुद्धि आयेगी। अरे, डॉक्टर गुप्ता, आप इधर बैठिए न।

परिडत जी—बस, थोड़ा ही मार्जन रह गया है बाबू जी।

(मार्जन करता है।)

डॉक्टर गुप्ता—महाराज, क्यों मारना चाहते हो बीमार को। निमोनिया हो जायगा, निमोनिया। (परिडत डॉक्टर के कहने पर भी मार्जन किये ही जाता है।) अटर न्यूसेन्स, मिस्टर चन्द्रकान्त!

चन्द्रकांत—(कड़क कर) बस रहने दो। सुनते नहीं डॉक्टर गुप्ता क्या कह रहे हैं? निमोनिया हो जायगा।

पण्डित जी—जैसी आपकी इच्छा । मेरा तो विचार है, विनोद बाबू का इतने से ही बुखार उतर गया होगा ।

(चला जाता है ।)

डॉक्टर गुप्ता—मंत्रों से बीमारी अच्छी हो जाती तो हम क्या भाड़ भोंकने को इतना पढ़ते ! न जाने देश का यह अज्ञान कब दूर होगा ! (डॉक्टर खाट के पास खड़ा होकर विनोद को देखता है) बुखार तेज़ है । जीभ दिखाइए । पेट दिखाइए । (थर्मामीटर लगा कर नाड़ी की गति गिनता है, फिर थर्मामीटर देखकर) १०४ डिग्री । कोई बात नहीं, ठीक हो जायगा । दवा लिखे देता हूँ, डिस्पेन्सरी से मंगा लीजिएगा । दो-दो घण्टे बाद । पीने को केवल दूध । यू विल बी आल राइट विद इन टू थ्रार थ्री डेज । चन्द्रकांत से ठीक हो जायेंगे । वेचैनी मालूम हो, बुखार न उतरे तो बरफ़ रखिएगा सिर पर ।

चन्द्रकांत—ठीक है । (विनोद से) घराने की कोई बात नहीं । ठीक हो जायेंगे, मामूली बुखार है । मैं अभी दवा लाता हूँ ।

डॉक्टर गुप्ता—मैं शाम को भी आकर देख लूंगा । अच्छा मिस्टर चन्द्रकांत !

[एक तरफ़ से दोनों चले जाते हैं । दूसरी तरफ़ से सरस्वती आती है ।]

सरस्वती—क्या हुआ, पण्डित जी चले गये ? मार्जन कर गये ?

विनोद—(चुपचाप पड़ा रहता है ।)

सरस्वती—(बेह छूकर) अब तो बुखार कम है । देग्वा मंत्र का प्रभाव, मार्जन करते ही फरक पड़ गया । (वहीं से चिल्ला कर) प्रतिमा ओ प्रतिमा, मुनियो री ज़रा ।

प्रतिमा—(वहीं से चिल्लाती हुई) क्या है ?

सरस्वती—देख तो पण्डित जी गये क्या । बुखार तो कुछ उतरा

दिखायी दे है । उनसे कह ज़रा और थोड़ी देर मार्जन कर दें ।

विनोद—नहीं रहने दीजिए । वे मार्जन कर गये हैं ।

सरस्वती—क्या हर्ज है, अपने घर के ही पण्डित तो हैं । आधी रात को बुलाओ तो आधी रात को आवें । मखौल है क्या बीस रुपये महीना, तीज-त्यौहार पर आटा-सीधा अलग । तीस तो पड़ी जायें होंगे । ऊपर से भी आमदनी हाँ जायें होंगी ।

(प्रतिमा आती है ।)

प्रतिमा—पण्डित जी तो गये, अम्मा ।

विनोद—माता जी, मार्जन रहने दीजिए । काफ़ी हो गया ।

(चुप हो जाता है । वैद हरिचन्द शान्ति के साथ आते हैं ।)

सरस्वती—लो, वैद जी आ गये । आओ वैद जी ।

हरिचन्द—क्या बात है बहू जी ? सवेरे ही शान्ति जो पहुँचा तो मैं डर गया, कायदे से किसी आदमी को देखकर वैद्य को खुश होना चाहिए, परन्तु मेरी आदत और ही है, मैं तो चाहता हूँ अपनी जान-पहचान के लोग मदा प्रसन्न रहें । हाँ, क्या बात है ?

(संकेत से पूछता है ।)

सरस्वती—ये कांति के साथ पड़े हैं वैद जी । छुट्टियों में उसी के संग सेर को आया, सो बिचारा बीमार पड़ गया ! जरा देखो तो—

[जैसे ही वैद्य नाड़ी देखने को बढ़ता है वैसे ही विनोद बोल उठता है :]

विनोद—डॉक्टर गुप्ता भी देख गये हैं, माता जी ।

हरिचन्द—फिर मेरी क्या आवश्यकता है, मेरा काम ही क्या है (एकदम दूर जा खड़ा होता है) मैं ऐसे रोगियों का इलाज नहीं करता । उसी डॉक्टर का इलाज करो । और मैं तो राजा भूपेन्द्रसिंह के यहाँ जा रहा था । सोचा, बाबू जी ने बुलाया है तो जाना ही चाहिए ।

(लौटने लगता है ।)

सरस्वती—वैद जी, उनकी भली चलायी। आने दो डॉक्टर गुप्ता को। इलाज तो तुम जानो, तुम्हारा ही होगा। मैं क्या कान्ति के मित्र को और बीमार होने दूँगी? नहीं तुम्हें ही इलाज करना होगा। तुम्हारी ही दवा दी जायगी। चलो देखो। उन मरों ने प्रतिमा को तो मार ही दिया था। तुम्हीं ने तो बचाया। वाह, यह कैसे हो सके हैगा? इस घर में डॉक्टरी नहीं चलेगी।

हरिचन्द्र—(पास जाकर विनोद को देखते हुए) हाँ, सोच लो। मैं उन लोगों में से नहीं हूँ जो दवा देने के लिए भागते फिरें। मैं अच्छी तरह जानता हूँ, बाबू चन्द्रकान्त डॉक्टरों के चक्कर में पड़ गये हैं, जो अंग्रेजी दवाइयाँ देकर लोगों को मार देते हैं। (व्यंग्य से हँसकर) ये डॉक्टर भी अजीब हैं। देशी बीमारी और अंग्रेजी दवाई! न देश, न काल! (विनोद को देखकर) पेट खराब है। काढ़ा देना होगा। एक गोली दूँगा, काढ़े के साथ दे देना। बुखार पचेगा और ठीक हो जायगा।

सरस्वती—(उछलकर) मैं कह नहीं रही थी कब्जी से बुखार है। कहो विनोद, क्या कहा था? घोड़ी नहीं चढ़े तो क्या बरात भी नहीं देखी! बहुत-सी बीमारी का इलाज तो मैं खुद ही कर लूँ हूँगी।

हरिचन्द्र—बीमारी पहचानने में कर तो ले कोई मेरा मुकाबिला। बड़े-बड़े सिविल सर्जन मुझे बुलाते हैं। अभी उस दिन राजा के यहाँ सारे शहर के डॉक्टर इकट्ठे हुए, किसी की समस्या में नहीं आ रहा था क्या बीमारी है। मुझे बुलाया गया, देखते ही मैंने भट से कह दिया यह बीमारी है।

सरस्वती—(वैद्य की तरफ विश्वास से देखकर) फिर मान गये।

हरिचन्द्र—मानते न तो क्या करते? वह सिक्का बैठा कि शहर भर में धूम मच गयी। अब रोज़ जाता हूँ।

सरस्वती—आराम आ गया फिर ? भला क्यों न आराम आता । हमारे वैद जी क्या कोई कम हैं ।

हरिचन्द्र—अभी देर लगेगी । पुराना रोग है । ठीक हो जायगा ।

सरस्वती—अरे, तो आराम नहीं आया ? भला कौन बीमार है ?

हरिचन्द्र—उनकी बड़ी लड़की ।

सरस्वती—(आश्चर्य) वह गप्पो क्या वैद जी ? बड़ी अच्छी लड़की है बिचारी । राम करे अच्छी हो जाय !

हरिचन्द्र—जी हाँ । अच्छा, चला । काढ़ा और गोली भेज दूँगा । पहले बुखार पचेगा, फिर उतरेगा । उस दिन राजा साहब बोले—वैद्य जी, हमने आपको अपने परिवार का चिकित्सक बना लिया है ।

सरस्वती—सो तो है ही । तुम्हें क्या कमी है ! मैं उनसे यही तो कहूँ हूँ कि हमें तो वैद्य जो की दवा लगे है । पर न जाने.....

हरिचन्द्र—सस्ती दवा, थोड़ी फीस, देशकाल के अनुसार । और मैं क्या डॉक्टरों नहीं जानता ! मैंने भी तो मेटीरिया मेडिका, सर्जरी पढ़ी है ।

सरस्वती—सो तो है ही वैद जी ।

[सरस्वती वैद्य के साथ एक द्वार से निकल जाती है । दूसरे से चन्द्रकांत सुखिया के साथ दवा लेकर आते हैं ।]

चन्द्रकांत—लो बेटा विनोद, एक खुराक पी लो । अभी ठीक हो जाओगे ।

(विनोद को उठाकर दवा पिलाता है ।)

विनोद—अभी वैद्य हरिचन्द्र भी देखने आये थे ।

चन्द्रकांत—(चौंककर) आये थे ? वह मूर्ख वैद्य ! वह क्या जाने इलाज करना । इन औरतों के मारे नाक में दम है साहब । दवा तो नहीं पी न ? अच्छा दो-दो घण्टे बाद दवा लेते रहना । पीने को दूध, बस और कुछ नहीं । मैं काम से जा रहा हूँ (जाते-जाते सुखिया से)

देख, तू यहाँ बैठ । बाबू की देख-भाल करना, भला ।

सुखिया—जी मरकार ।

(चन्द्रकांत चला जाता है ।)

सुखिया—बाबू, मैं तो भाड़-फूँक में विश्वास करता हूँ । हाथ फेरते ही बुखार उतर जावेगा । यह ओम्हा से पानी लाया हूँ । दो घण्टे में बुखार क्या उसका नाम भी न रहेगा । मैंने तो लोटे बाबू से सवेरे ही कहा—कहो तो ओम्हा को बुलाऊँ, पर वे न माने । कहा, तू पागल है सुखिया । मैं चुप हो रहा । क्या करता, गरीब आदमी ठहरा । अभी दो घण्टे में बुखार का नाम भी न रहेगा बाबू !

विनोद—अरे कहीं बुखार भी भाड़-फूँक से गया है सुखिया ! मैं तो गाँव का रहने वाला हूँ । मैंने तो कहीं नहीं देखा कि बुखार भाड़-फूँक से उतरता है । ज़रा पानी तो दो ।

सुखिया—(दरी पर बैठकर तमाखू खाता हुआ) शर्त बंद लो शर्त ! और वह ओम्हा तो वैदगी भी जाने है । हमारे यहाँ तो कोई भी और कहीं नहीं जाय हैगा । वैसे तुम्हारी मर्ज़ी । पानी पियोगे ? देता हूँ । यही पानी पो लो न । किसी को मालूम भी न होगा । न दवा, न दारू ।

(पानी देता है ।)

विनोद—(पानी पीकर) नहीं सुखिया, ओम्हा की कोई आवश्यकता नहीं है । कान्ति गया क्या !

सुखिया—गये होंगे । घोड़ी तो दो दिन से खड़ी थी । अब तो पहुँचने वाले होंगे ।

[इसी समय सरस्वती कटोरे में काढ़ा और दूसरे हाथ में दवा की गोली लेकर आती है ।]

सरस्वती—लो बेटा विनोद, ज़रा जी कड़ा करके पी तो लो । ऊपर

से यह गोली खा लो। नहीं-नहीं, पहले गोली फिर काढ़ा। मैं भी कितनी भुलक्कड़ हूँ।

विनोद—दवा तो अभी मैं पी चुका हूँ, माता जी। बाबू जी पिला गये हैं।

सरस्वती—य्या कहा, दवा दे गये हैं? कोई हर्ज नहीं, फायदा तुम्हें इसी दवा से होगा। यह काढ़ा ऐसा-वैसा नहीं है। एकदम लाभ होगा और मरग तो तजुर्वा है। प्रतिमा मर रही थी, इन्हीं वैद जी ने उसे जिलाया। लो, पी तो लो।

[कटोरा देनी है। विनोद चुपचाप काढ़ा पीने लगता है, इसी समय चन्द्रकांत लौट आते हैं। विनोद को दवा पीते देखकर :]

चन्द्रकांत—यह क्या हो रहा है विनोद ?

सरस्वती—दवा दे रही हूँ और क्या ?

चन्द्रकांत—तुम पागल हो गयी हो। विनोद डॉक्टर गुप्ता की दवा पी चुका है। उसे और दवा देना...

सरस्वती—मुनो मैं यह नहीं मानती। मैं डॉक्टर की दवा और डॉक्टर दोनों को व्यर्थ समझती हूँ। मालूम नहीं है, प्रतिमा को इस डॉक्टर ने मार ही डाला था, वह तो कहो वैद हरिचन्द ने बचा लिया।

चन्द्रकांत—तुम मूर्ख हो। कहीं डॉक्टर मूर्ख होता है? मूर्ख हैं ये वैद्य, जो कुछ नहीं जानते। प्रतिमा को तो डॉक्टर गुप्ता से लाभ हुआ था।

सरस्वती—बिलकुल ग़लत। दवा तो मैं देती थी। मुझे मालूम है, किससे लाभ हुआ उसे।

चन्द्रकांत—विनोद, दवा मत पियो, हर्गिज़ न पियो। वैद्यों की दवा पीना मृत्यु को बुलाना है।

सरस्वती—बेटा, यह काढ़ा पीना बहुत आवश्यक है। इसे बिना

पिये तुम्हें लाभ ही न होगा। इन्हें कहने दो। ये सदा ऐसी ही कहते रहे हैं। यदि इन वैद जी की दवा न होती तो प्रतिमा कभी की मर गयी होती।

चन्द्रकांत—(कटोरा विनोद के हाथ से लेकर) इसे रहने दो। न जाने संसार से मूर्खता कब जायगी ? लो इसे पियो।

सरस्वती—नहीं, यह नहीं हो सके हैगा। तुम्हें मालूम है वैद हरिचन्द्र की दवा से प्रतिमा मरते-मरते बची है। पराया लड़का है विचारा, कांति के साथ सैर को आया है। डॉक्टरों के चक्कर में पड़ा और बस। मैं हा-हा खाती हूँ, इसे डॉक्टर की दवा मत दो। रहने दो विनोद, क्या मैं इस घर की कोई भी नहीं हूँ।

चन्द्रकांत—क्या तुम यह नहीं मानती कि औरतों में बुद्धि थोड़ी होती है। मेरा कहा मानो और विनोद को डॉक्टर की दवा पीने दो। अच्छा हो जायगा—जल्दी अच्छा हो जायगा, सरस्वती !

सरस्वती—देखो जी, तुम क्या नाम है मुझे ही सदा दवांत रहते हो ! इस घर में कोई भी मेरी नहीं सुने हैगा। (एकदम रोकर) दो और गाली दो, मार लो। (काढ़ा गोली ज़मीन पर रखकर रोने लगती है। आंचल से आँसू पोंछती हुई) जैसे मैं इस घर की कोई भी नहीं हूँगी। ई ई ई ई न अच्छी बात सुने हूँगे न समझ की बात ई ई ई ई !

(रोती है।)

चन्द्रकांत—(हैरान होकर) अरे तो भगवान, मैंने तुम्हें गाली कब दी। मैंने तो यही कहा है कि डॉक्टर की दवा से विनोद अच्छा हो जायगा।

सरस्वती—(रोते हुए) ई ई ई और गाली किसे कहे हूँगे। मुझ मरी को मौत भी तो नहीं आवे है। एक दफे मर जाऊँ तो रोज़-रोज़ का भंभट तो जाय। (रोकर) वैद हरिचन्द्र ने ज़हर तो नहीं दिया है, काढ़ा और गोली ही तो दी है। फिर न जाने उतनी ज़िद क्यों है। मैं

क्या कोई इसकी दुश्मन हूँ (हिचकी भरकर) अच्छा करो तो बुरा होय है । (अकड़कर) मैं साफ़ कह दूँ हूँ, विनोद पियेगा तो काढ़ा ही, डॉक्टर की दवा हरगिज़ नहीं पियेगा ।

चन्द्रकांत—मैं कहता हूँ विनोद डॉक्टर की दवा पियेगा ।

सरस्वती—मैं कहती हूँ विनोद वैद की दवा पियेगा ।

चन्द्रकांत—तुम मूर्ख हो, तुम्हें कोई कहाँ तक समझावे । मैंने दुनिया देखी है । मैं जानता हूँ आजकल किसकी दवा से फायदा होता है । देखो ज़िद न करो ।

सरस्वती—(अड़ती हुई) देखो मेरी सुनो, घर के मामले में तुम्हें चोलने का कोई अधिकार नहीं है । विनोद अगर दवा पियेगा तो वैद की । वैद जी अभी तो कह गये हैं कि विनोद का बुखार ठीक हो जायगा । समझे कि नहीं ।

चन्द्रकांत—नहीं, नहीं, हरगिज़ नहीं । विनोद दवा पियेगा तो डॉक्टर की । नहीं तो कोई दवा न पियेगा ।

विनोद—इससे तो अच्छा यह है कि मैं कोई दवा न पीऊँ ।

सरस्वती—यह कैसे हो सके हैगा भइया, मैं मर जाऊँ । इससे तो अच्छा है भगवान मुझे उठा लें । अब इस घर में मेरी कोई ज़रूरत नहीं है । हाय गम, दूसरों के मामले भी मेरा अपमान हो रिया है और तुम देख रहे होगे । (क्रोध से) मैं तो अपना सिर फोड़ लूँगी । इस घर में अब मेरी ज़रूरत ही क्या है । ले पी विनोद !

चन्द्रकांत—(लाचारी से) अच्छा भाई, काढ़ा पी लो, मुझे क्या । अजब परेशानी में जान है इन औरतों के मारे ! तुम लोग कभी कोई नयी बात नहीं सीखोगी । कभी दूसरे का कहना न मानोगी । कभी भला-बुरा न सोचोगी (अकड़कर) डॉक्टर मेरा चाचा तो नहीं लगता, लेकिन याद रखो विनोद, जल्दी अच्छा होने के लिए यह आवश्यक है कि तुम डॉक्टर की दवा पियो । अच्छा चलो, विनोद के ऊपर ही फैसला

रहा । क्यों विनोद ?

सरस्वती—देखा, लगे उसे बहकाने । वह क्या जाने बेचारा । मैं कहूँ हूँ एक दिन वैद की दवा देकर तो देखो । लो बेटा, पियो तो सही काढ़ा ।

चन्द्रकांत—और मैं दुश्मन हूँ ।

सरस्वती—तुम क्यों दुश्मन होतें । राम करे उसके दुश्मन रहे ही न ! पियो तो सही ।

विनोद—(दोनों के हाथ जोड़कर) यदि आप मुझे मेरे हाल पर छोड़ दें तो मैं शाम तक ठीक हो जाऊँगा ।

दोनों—(चिल्लाकर) यह कैसे हो सकता है । दवा तो तुम जानो, पीनी ही पड़ेगी ।

विनोद—नहीं, नहीं, आप क्षमा करें बाबूजी, मैं अंग्रेजी दवा पीने का आदी नहीं हूँ ।

सरस्वती—(चिल्लाकर) मैंने कहा था न कि विनोद को वैद जाँ की दवा से ही आराम होगा ।

विनोद—नहीं मैं वैद्य की दवा भी न पीऊँगा । मैं वैसे ही ठीक हो जाऊँगा, माता जी ।

(कांति प्रवेश करता है ।)

कांति—आई डाक्टर साहब, मैंने कहा—(पिता को देखकर) विनोद को ज़रा डाक्टर साहब को भी दिखा दूँ । (विनोद उठकर जाने लगता है) अरे विनोद, तुम तो जा रहे हो । क्या बात है ? सुनो देखो डाक्टर साहब आये हैं । सुनो विनोद !

विनोद—मेरा बुखार घूमने से उतरता है, कांति । मैं घूमने जा रहा हूँ ।

(जाता है ।)

डाक्टर—ही इज सफरिंग परहेप्स फ्राम किंग्स डिसीज़—इनको

नींद में घूमने को बीमारी मालूम होती है ।

कांति—(चिल्लाकर) बिचारा विनोद ! मैं जाता हूँ । शायद वह अपने आपे में नहीं है ।

चन्द्रकांत—लेकिन डॉक्टर ने तो बुखार की दवा दी है ।

सरस्वती—और वैद जी ने अपच का काढ़ा, डॉक्टर साहब ।

सुखिया—फायदा तो मंरे लाये पानी से हुआ है, मैं ओम्हा से फुँकवा कर पानी लाया था ।

डॉक्टर—मिस्टर कांति, मुझे इस घर में सभी बीमार मालूम होते हैं, चलो ।

सब—(चिल्लाकर) ओः डाक्टर ?

(पर्दा गिरता है ।)

सेठ गोविन्ददास

सेठ गोविन्द प्रमुख राजनीतिक नेता हैं। किन्तु राजनीतिज्ञ होने के साथ-साथ आप एक कुशल नाटककार भी हैं। प्रकाशित और अप्रकाशित दो दर्जन के लगभग नाटक-संग्रह आप लिख चुके हैं।

डॉ० रामकुमार वर्मा की भाँति ऐतिहासिक और सामाजिक दोनों प्रकार के एकांकी तो आपने लिखे ही हैं ; पर राजनीतिक होने के नाते समस्यात्मक और विचारात्मक एकांकी भी कम नहीं लिखे।

सेठ जी ने एकांकी की कला में कई प्रकार के प्रयोग किये हैं। उन्होंने जहाँ ऐसे एकांकी लिखे हैं जिनमें केवल एक ही व्यक्ति बोलता है, वहाँ ऐसे भी जिन में पात्रों का बाहुल्य है, जहाँ दृश्य जल्दी-जल्दी बदलते हैं और संकलन-त्रय बिखरकर रह जाता है। उनका सफलतम एकांकी 'अर्ध-जागृत' घूमने वाले मंच की अपेक्षा रखता है, जिसमें एक साथ ही चार-छः सेट सजाये हों और रंगमंच के घूमने के कारण दृश्य-परिवर्तन होता जाय।

'शिवाजी का सच्चा स्वरूप' एक छोटा-सा आदर्शप्रधान एकांकी है जो सम्भाषण की हृद तक सरल होने पर भी सम्भाषण मात्र नहीं। और सेनानायक की मूर्खता पर क्रोध में आये हुए शिवाजी के भाषण द्वारा उनका सच्चा रूप हमारे समक्ष रखता है। न केवल यह, बल्कि बताता है कि जन के नायक का चरित्र कैसा होना चाहिए। स्कूल-कॉलेजों के रंगमंच पर यह बड़ी सुगमता से खेला जा सकता है।

रचनाएँ

नाटक :—कर्तव्य; हर्ष; शशिगुप्त; प्रकाश ।

एकांकी नाटक :—सप्त रश्मि; चतुष्पथ; नवरस; स्पर्धा; पंचभूत; एकादशी ।

शिवाजी का सचा स्वरूप

पात्र

शिवाजी : प्रसिद्ध मराठा वीर
मोरोपंत पिंगले : पेशवा
आवाजी सोनदेव : शिवाजी का एक सेनापति

स्थान

राजगढ़ दुर्ग का कण्ठ दालान

समय

सन् १६४८ ई० संध्या ।

[दाहिने ओर दालान का कुछ हिस्सा दिखायी देता है । दालान की छत पत्थर के खम्भों पर टिकी है । उसके पीछे की दीवाल भी पत्थर की ही है । दालान के पीछे की ओर दाहिनी तरफ़, दूर पर, गढ़ की फ़सील और कुछ बुर्जियाँ दीख पड़ती हैं । बायीं तरफ़ सैहाद्री-पर्वत-माला की शिखरावली दृष्टिगोचर होती है । कुछ शिखरों की ओट में सूर्य अस्त हो रहा है, जिसके प्रकाश से सारा दृश्य आलोकित है । दालान के

सामने किले का खुला मैदान है। मैदान में एक ऊँचे स्तम्भ पर भगवा रंग का माराठा झंडा फहरा रहा है। दालान में जाजम बिछी है, उस पर कीमत्वाब की गद्दी पर मसनद के सहारे शिवाजी वीरासन से किसी विचार में मग्न हैं। उनके स्वरूप और वेष-भूषा के सम्बन्ध में कुछ भी लिखना इसलिए निरर्थक है कि एक भी भारतीय ऐसा नहीं जो उससे परिचित न हो, दालान के बाहर शस्त्रों से सुसज्जित दो मावली शरीर-रक्षक खड़े हुए हैं। बायीं ओर से मोरोपंत पिंगले का प्रवेश। मोरोपंत अधेड़ अवस्था का गेहुँए वर्ण का, ऊँचा-पूरा व्यक्ति है। वेष-भूषा शिवाजी से मिलती-जुलती है; केवल सिर की पगड़ी में अंतर है। मोरोपंत की पगड़ी शिवाजी की पगड़ी के सदृश मुगल ढंग की न होकर मराठी तरज की है, उसके मस्तक पर त्रिपुराङ्ग भी है।]

मोरोपंत—(अभिवादन कर) श्रीमन्त सरकार, सेनापति आवाजी सोनदेव कल्याण प्रान्त को जीत, वहाँ का सारा खज़ाना लूटकर आ गये हैं।

शिवाजी—(चौंककर) अच्छा। (मोरोपंत की ओर देखकर) बैठो पेशवा, बड़ा शुभ सम्वाद लाये। आवाजी सोनदेव है कहाँ ?

मोरोपंत—(वीरासन से बैठकर) श्रीमन्त की सेवा में अभी उपस्थित हो रहे हैं।

[कुछ देर निस्तब्धता। शिवाजी और मोरोपंत दोनों उत्सुकता से बायीं ओर देखते हैं। कुछ ही देर में आवाजी सोनदेव बायीं ओर से आता हुआ दिखायी देता है। उसके पीछे हम्मालों का एक बड़ा भारी झुण्ड है। हर हम्माल के सिर पर एक हारा (बड़ा भारी टोकना) है। हम्मालों के झुण्ड के पीछे एक पालकी है पालकी बंद है। आवाजी सोनदेव भी अधेड़ अवस्था का ऊँचा-पूरा मनुष्य है। वेष-भूषा मोरोपंत के सदृश है। आवाजी सोनदेव दालान में आकर शिवाजी का अभिवादन करता है। हम्मालों का

भुण्ड और पालकी दालान के बाहर रहते हैं।

शिवाजी—वैटो, आवाजी, कल्याण-विजय पर तुम्हें वधाई है।

आवाजी सोनदेव—(बैठते हुए) वधाई है श्रीमन्त सरकार को।

शिवाजी—कहो पैदल मावलियों ने अधिक वीरता दिखायी या हेटकरियों ने ?

आवाजी सोनदेव—दोनों ने ही श्रीमन्त सरकार !

शिवाजी—और घोड़सवारों में वारगिरों ने या शिलेदारों ने ?

आवाजी सोनदेव—इनमें भी दोनों ने ही, श्रीमन्त।

शिवाजी—सेना के अधिपति कैसे रहे ?

आवाजी सोनदेव—पैदल के अधिपति—नायक, हवालदार, जुमलादार और एक-हज़ारी, तथा घोड़सवारों के अधिपति—हवालदार, जुमलादार और सुभेदार; सभी का काम प्रशंसनीय रहा, श्रीमन्त सरकार।

शिवाजी—(हमाल की ओर देखकर मुस्काते हुए) कल्याण का खज़ाना भी लूट लाये; बहुत माल मिला ?

आवाजी सोनदेव—हाँ, श्रीमन्त, सारा खज़ाना लूट लिया गया और इतना माल मिला जितना अब तक की किसी लूट में भी न मिला था। चाँदी, सोना, जवाहरात, न जाने क्या-क्या मिला। मैं तो समझता हूँ, श्रीमन्त केवल दक्षिण ही नहीं उत्तर की भी विजय इस सम्पदा से हो सकेगी।

शिवाजी—(हमालों के पीछे पालकी को देखकर) और उस मेणा में क्या है ?

आवाजी सोनदेव—(मुस्कराते हुए) उस मेणा...उस मेणा में, श्रीमन्त, इस विजय का सबसे बड़ा तोहफ़ा है।

शिवाजी—(उत्सुकता से आवाजी सोनदेव की ओर देखते हुए) थर्थात् ?

आवाजी सोनदेव—श्रीमन्त, कल्याण के सुभेदार अहमद की पुत्र-वधू के सौन्दर्य का वृत्त कौन नहीं जानता ? उसे भी श्रीमन्त की सेवा के लिए बन्दी करके लाया हूँ ।

[शिवाजी की सारी प्रमत्तता एकाएक लुप्त हो जाती है । उनकी भृकुटी चढ़ जाती है और नीचे का ओठ ऊपर के दातों के नीचे आ जाता है । आवाजी सोनदेव शिवाजी की परिवर्तित मुद्रा देखकर घबड़ा-मा जाता है । मोरोपंत एकटक शिवाजी की ओर देखता है । कुछ देर निस्तब्धता रहती है ।]

शिवाजी—(भरपिये हुए स्वर में) मेणा को तत्काल इस पड़वी में लाओ ।

[आवाजी सोनदेव जल्दी से दालान के बाहर जाता है । शिवाजी एकटक पालकी की ओर देखते हैं; मोरोपंत शिवाजी की तरफ़ । कुछ ही क्षणों में पालकी दालान में आती है । ज्योंही पालकी दालान में रखी जाती है त्योंही शिवाजी जल्दी से पालकी के निकट पहुँचते हैं ! मोरोपंत शिवाजी के पीछे जाता है ।]

शिवाजी—(आवाजी सोनदेव से) खोल दो मेणा, आवाजी ।

[आवाजी सोनदेव पालकी के दरवाज़े खोलता है । दरवाजे खुलते ही अहमद की पुत्र-वधू उसमें से निकल चुपचाप एक ओर सिकुड़कर खड़ी हो जाती है । वह परम सुन्दरी युवती है । वेष-भूषा सुगल स्त्रियों के सदृश ।]

शिवाजी—(अहमद की पुत्र-वधू से) माँ, शिवा अपने मिपह-मालाग की इस नामाकूल हरकत पर आगसे मुआफ़ी चाहता है । आह ! कैसी अजीबो-ग़रीब खूबसूरती है आपकी । आपको देखकर मेरे दिल में एक...सिर्फ़ एक बात उठ रही है—कहीं मेरी माँ में आपकी-सी खूबसूरती होती तो मैं भी बदसूरत न होकर एक खूबसूरत शग़्श होता । माँ आपकी खूबसूरती को मैं एक...सिर्फ़ एक काम

में ला सकता हूँ—उसका हिन्दू विधि से पूजन करूँ ; उसकी इस्लामी तरीके से इबादत करूँ । आप ज़रा भी परेशान न हों । माँ, आपको आराम, इज्ज़त, हिफ़ाज़त, और ख़बरदारी के साथ आपके शौहर के पास पहुँचा दिया जायगा; बिना देरी के फौरन ! (आवाजी सोनदेव की ओर घूमकर) आवाजी, तुमने ऐसा काम किया है जो कदाचित् क्षमा नहीं किया जा सकता । शिवा को जानते हुए, निकट से जानते हुए, तुम्हारा साहस ऐसा धृष्टित कार्य करने के लिए कैसे हुआ ? शिवा न आज पर्यन्त किसी मसजिद की दीवाल में बाल बराबर दरार भी न आने दी । शिवा को यदि कहीं कुरान की पुस्तक मिली तो उसने सिर पर चढ़ा, उसके एक पन्ने को भी किसी प्रकार की क्षति पहुँचाये बिना, मौलवी साहब की सेवा में भेज दिया । हिन्दू होते हुए भी शिवा के लिए इस्लाम-धर्म पूज्य है । इस्लाम के पवित्र स्थान, उसके पवित्र ग्रन्थ, सम्मान की वस्तुएँ हैं । शिवा हिन्दू और मुसलमान प्रजा में कोई भेद नहीं समझता । अरे ! उसकी सेना में मुसलिम सैनिक तक हैं । वह देश में हिन्दूराज्य नहीं, सच्चे स्वराज्य की स्थापना चाहता है । आतताइयों से सत्ता का अपहरण कर उदार-चेताओं के हाथों में अधिकार देना चाहता है । फिर पर-खी—अरे ! पर-खी तो हरेक के लिए माता के समान है । जो अधिकार-प्राप्त जन हैं, जो सरदार हैं, या राजा, उन्हें...उन्हें तो इस सम्बन्ध में विवेक, सबसे अधिक विवेक रखना आवश्यक है । (कुछ रुककर) आवाजी, क्या तुम मेरी परीक्षा लेना चाहते थे ? इसलिए तो तुमने यह कृति नहीं की ? शिवा ये लड़ाई-भगड़े, ये लूट-पाट क्या व्यक्तिगत मुखों के लिए कर रहा है ? क्या स्वयं चैन उड़ाना उसका उद्देश्य है ? तब...तब तो ये रक्त-पात, ये लूट-मार धृष्टित, अत्यन्त धृष्टित कृतियाँ हैं । शिवा में यदि शील नहीं तो उसके सेनापतियों, सरदारों को शील का स्पर्श तक नहीं हो सकता । फिर तो हम में और इन्द्रिय-लोलुप लुटेरों तथा डाकुओं में कोई अंतर

ही नहीं रह जाता । अरे तब तो हमारे जीवन से हमारी मृत्यु, हमारी विजय से हमारी पराजय, कहीं श्रेयस्कर है । (मोरोपंत से) आह ! पेशवा, यह...यह मेरे...मेरे एक सेनापति ने...मेरे एक सेनापति ने क्या...क्या कर डाला ? लज्जा से मेरा सिर आज पृथ्वी में नहीं, पाताल में घुसा जाता है । इस पाप का न जाने मुझे कैसा...कैसा प्रायश्चित्त करना पड़ेगा ? (कुछ रुककर) पेशवा, इस समय तो मैं केवल एक घोषणा करता हूँ—भविष्य में अगर कोई ऐसा कार्य करेगा तो उसका सिर उसी समय धड़ से जुदा कर दिया जायगा ।

[शिवाजी का सिर नीचे झुका जाता है । अहमद की पुत्र-बधू कनखियों से शिवाजी की ओर देखती है । उसकी आँखों में आँसू छलछलता आते हैं । मोरोपंत शिवाजी की तरफ देखता है और आवाजी सोनदेव घबड़ाहट-भरी दृष्टि से मोरोपंत की ओर ।]

[यवनिका]

भुवनेश्वर प्रसाद

भुवनेश्वर प्रसाद हिन्दी एकांकी साहित्य में क्रान्तिकारियों का विद्रोह लेकर आये। उनकी रचनाओं में वही उग्रता, प्रखरता, तीखापन और स्पष्टवादिता मिलती है। स्वाभाविकता के साथ आया हुआ वाग-वैदग्ध्य और निर्मम व्यंग्य उनके नाटकों को साधारण धरातल से ऊपर उठा देता है। उनके प्रस्तुत किये हुए चित्र गहरे और तीखे होते हैं। भाषा कठोर और पैनी। राजाओं-महाराजाओं की गुण-गाथाओं और प्राचीन हास-विलास से निकालकर हिन्दी एकांकी को आज के यथार्थ जगत तक लाने में भुवनेश्वर प्रसाद का बड़ा हाथ है।

‘स्ट्राइक’ हमारी मध्यवर्गीय बुर्जुआ सोसाइटी का एक चित्र मात्र है, नाटककार ने एक घटना उठायी है और कथोपकथन द्वारा हमारी सभ्यता के पर्दे-पर-पर्दे खोलता चला गया है। ‘स्ट्राइक’ भुवनेश्वर प्रसाद की कला का पूर्ण प्रतिनिधित्व करता है।

रचनाएँ

एकांकी संग्रह :— कारवाँ

स्ट्राइक

पात्र

पहला दृश्य

पुरुष (श्रीचन्द्र)

स्त्री

दूसरा दृश्य

तीन पुरुष

एक युवक

पुरुष (श्रीचन्द्र)

तीसरा दृश्य

पहले दृश्य का पुरुष

दूसरे दृश्य का युवक

पहला दृश्य

[एक मध्यवर्गीय बंगले के खाने का कमरा, जो बरामदे में पर्दे डालकर बना लिया गया है । एक बड़ा-सा साइड टेबिल जिस पर चीनी के बरतन, प्लेट-प्याले नुमायशी ढंग से रखे हैं । पास में एक छोटी मेज

पर फ़ोर्क, क्वाकरओट्स, पाल्सन बटर और अचार के दो अमृतबान सजे हैं। खाने की मेज़ अंडाकार है, जिसके चारों तरफ़ चार कुर्सियाँ पड़ी हैं। दो पर एक स्त्री और एक पुरुष बैठे हैं; पुरुष, सुपुरुष, स्त्री, कुछ बोले तो पता चले, कम-से-कम दस मिनट से खामोश तीसरे पहर की चाय पी रही है।]

स्त्री—(चाय का प्याला घुमाते हुए) तो सरदार साहब बहुत चौंके ?

पुरुष—(अनमना) हूँ...

स्त्री—(कुछ कहने के लिए साँस भरकर रह जाती है ।)

पुरुष—तो आज नौकर दोनों छुट्टी ले गये हैं ?.....

स्त्री—(दो घूंट चाय पीकर रुमाल से ओंठ पोंछती हुई) सरदार साहब की डाइरेक्टरों में तो खूब चलती है.....

पुरुष—(हास्यास्पद उत्साह से) यह ! यही तो इन कमबख्तों को मिटा देता है। यह समझते हैं कि बहुमत इन्हें गदहे से बल्लूड़ा बना देगा ! कम्बख्त यह नहीं समझते कि अब बहुमत के माने ही बदल गये हैं। बहुमत थोड़े से बेज़रर, अधमरे केचुओं का नाम थोड़ा ही है ! वह शक्ति, दुनिया को हिला देनेवाली शक्ति का नाम है और वह हमेशा एक आदमी—एक आदमी में होती है।

[स्त्री चुपचाप चाय उंडेलती है और दूध डालकर ध्यान से प्याले को देख रही है। पुरुष रोटी पर बेरहमी से मक्खन लगा रहा है और कुछ देर खामोशी-सी हो जाती है।]

पुरुष—सरदार साहब, राजा साहब, बाबू साहब, सबके साथ यही दिक्कत है। कम्बख्त जीवन की कला नहीं जानते; म्रियमान से निहत्थे पाजियों की तरह यह मौत तक खिसकते जाते हैं ! जब उन्होंने देखा कि मैं उनसे भीख नहीं माँगता, उनके तलवे नहीं सहलाता, ग्रह नहीं बनाता, पड्यंत्र नहीं करता तो मुँह बाकर रह गये ! जी हाँ, मुँह बाकर रह गये ! (प्याला रखकर हँसता है) यह कुछ

समझते-बूझते तो हैं नहीं। जब कभी इनके ठोकर लगती हैं, तो बस ग्वड़े होकर मुँह बाँध देते हैं। (आवाज़ धीमी करता है) लेकिन कपड़ों के नीचे यह सब इज्जतदार मोटे घुड़मुँहे, गदहे हैं गदहे ! हाँ, व्यवस्थित समाज में इनका एक लाभ ज़रूर है—यह ठोकरें खूब भेल लेते हैं ! डिविडेण्ड कम हुआ, इनके हाथ-पाँव फूल गये; किसी कॉलेज के प्रिन्सिपल ने किताबी अंग्रेज़ी में स्ट्राइक की धमकी दे दी, इनके हाथ-पाँव फूल गये, यह खौखला गये। (हाथ को नाटकीय ढंग से हिलाते हुए) मैंने साफ़ ऐलान कर दिया कि मैं तीन साल तक कोई डिविडेण्ड नहीं बाँटूँगा। (भद्दी तौर से अंगूठा दिखाता है) अंगूठा कर लो मेरा !

[स्त्री चाय खत्म करके घड़ी की तरफ़ देखती है और भँवों में कुछ घुसपुसाती है, पुरुष बेचारा क्या समझे ! वह एकाग्र खाता रहता है। कमरे में फिर निस्तब्धता छा जाती है।]

पुरुष—(ऊबा-सा) तो आज नौकर दोनों गायब ? मेम साहब ने चाय बनायी है, पर शाम को क्या होगा ? मेरी तो मीटिंग शायद आठ पर खत्म होगी।

स्त्री—(रुमाल से उँगलियाँ मलते) मैं..मैं (सहसा) तो जा रही हूँ।

पुरुष—कहाँ जा रही हो ? कहाँ ?

स्त्री—(बाहर की तरफ़ रुमाल हिलाते हुए) वहाँ।

पुरुष—(बाहर की तरफ़ देखता है) वहाँ ? बाज़ार, शापिंग के लिए ?

स्त्री—नहीं मैं तो लखनऊ जा रही हूँ, आखिरी जी० आई० पी० से लौट आऊँगी।

पुरुष—(अपना आश्चर्य भरसक छिपाते हुए) लखनऊ, जी० आई० पी०, आखिर क्यों !

स्त्री—(चाय खत्म कर चुकी है) कुल नहीं, ऐसे ही घूमने । सरदार साहब की बीवी हैं, मिसेज़ निहाल हैं, मैं हूँ, मिस मिस्तर हैं—उन्हीं कं कुल काम है, न जाने रेडियो लेने जा रही हैं क्या ?

पुरुष—(उँगली पोंछ रहा है) तो यह कहो ! (स्ककर) लेकिन कार क्यों नहीं ले जातीं ?

स्त्री—नहीं कार—कार नहीं । ज़्यादा-से-ज़्यादा जी० आई० पी० से लौट आयेंगे । वही शायद आखिरी गाड़ी है ।

पुरुष—(जेब से सोने की जेब-घड़ी निकालकर और उसे वास्केट पर पोंछकर) तो जी० आई० पी० यहाँ आती है १०-१५ पर, तुम यहाँ १०-२५ पर आ जाओगी । कार मैं पम्प पर छोड़ दूँगा—अरे मिलखी-राम के पेट्रोल पम्प पर । खाने के लिए यह करना कि मैं कार में टिफिन कैरियर रख लूँगा, तुम स्टेशन से सालन वगैरा ले आना; न होगा रोटियाँ यहाँ बन जायँगी (जेब में घड़ी रख लेता है और जेबें टटोलकर सस्ता सिगरेट केस निकालता है और एक सिगरेट जलाता है । धुँआं छोड़ते हुए) अब सरदार साहब के मिज़ाज ठिकाने आ जायँगे । कोई उसूल नहीं, कोई हौसला नहीं । भला इसे ज़िंदगी कहते हैं ?

स्त्री—तो जी० आई० पी० यहाँ साढ़े दस पर आती है ?

पुरुष—(फिर घड़ी निकाल लेता है और फिर उसे पोंछता है) नहीं १०-१५ पर । और जी० आई० पी० की गाड़ियाँ लेट नहीं होतीं—यह ई० आई० आर० नहीं है । (जैसे कोई अपनी ही चीज़ का बखान कर रहा हो) दुनिया का भविष्य उचित समय पर उचित काम करने वालों के हाथ में है—दुनिया की सारी दौलत, सारा आराम, सारा जस उसका है जो अपनी जगह पर कायम है और काम का जो छोटा हिस्सा उसका है उसे मशीन की तरह पूरा कर रहा है । अमरीका का एक बहुत बड़ा लेखक है बरनार्ड शा, उसने कहा है.....

स्त्री—(सहसा ऊबी-सी) मिसेज़ निहाल ने कहा तो था कि वह अपनी कार भेजेगी । तुम्हें मीटिंग में कब जाना है ?

पुरुष—(चौंककर घड़ी की तरफ़ देखता है) साढ़े चार ! तो लो मैं चला—(गुनगुनाता है)—चार बजकर सत्रह—तीन या चार मिनट मुझे ड्यूक कम्पनी में लगेंगे, चार—इक्कीस—खैर, तो चलो तुम्हें पिंडी के यहाँ छोड़ दूँगा; वहाँ से...या आओ निहाल के वहाँ तक ! दो मिनट की ही तो बात है ।

स्त्री—(अंगड़ाई लेते हुए) अच्छा ? (खड़ी हो जाती है) यही साड़ी पहने रहें या दूसरी (मुड़कर साड़ी देख रही है) पहन लें ।

पुरुष—(सिगरेट दो-तीन बार चूसकर फेंकते हुए) जैसा तुम्हारा जी चाहे, लेकिन तुम्हें मेरे सर की क्रम, बतला दो लखनऊ में क्या है ?

स्त्री—(बरबस-मुस्कराती हुई) लखनऊ में ?—बहुत-सी चीज़ें—छोटा-बड़ा इमामबाड़ा, चिड़ियाघर, हज़रतगंज, अमीना.....

पुरुष—नहीं, मैं पूछता हूँ, आज शाम को कोई खास बात ?

स्त्री—(जाते हुए) आज शाम को खास बात ? कोई खास बात नहीं है ।

पुरुष—(जैसे एक बड़ी मुहिम के लिए तैयार होते हुए) यहाँ आओ, यहाँ बैठो, (स्त्री घूमकर खड़ी हो जाती है) बैठो, मैं देखता हूँ, तुम कुछ दिनों से ऐसी ही हो रही हो । मैं जानता हूँ, तुम्हारी यहाँ तबीयत नहीं बहलती; पर छुट्टियों में निर्मल आ जायगा, मोनी भी शायद यहीं आये । तुम्हें मालूम हुआ, मोनी अबकी बी० ए० में फ़र्स्ट रही । लेकिन हाँ, बताओ यह तुम्हें हुआ क्या है ?

स्त्री—होता क्या ? कुछ नहीं हुआ, तुम अगर मेरी तबीयत का एक त्नाका बनाओ तो लकीर वहाँ...वहाँ बिजली तक पहुँच जाय—

पुरुष—(उत्साहित होकर) हाँ, लेकिन फिर यह बेताबी क्यों है ? देखो आदमी के सामने बड़ी समस्या यह है कि वह अपनी बची-खुची शक्ति किस तरह काम में ले आये ? आदिम जंगलीपन से लेकर आज तक की सभ्यता तक जो कुछ भी आदमी ने अपने को दुखी या सुखी बनाने के लिए किया है, वह इस शक्ति को काम में लाने के लिए । फिर दुःख या सुख तो इतनी ठोस चीज़ें हैं कि एक दिन तुम देखोगी कि यह शीशियों में बिका करेंगी, शीशियों में । मुझे इन टिमुएँ बहाने वालों से नफ़रत है, सग़त नफ़रत ! यह सिर्फ़ हरैली ही नहीं हैं, यह तो अपनी हार के गीत गाते हैं, नारे लगाते हैं ।

स्त्री—अच्छा उठो, फिर मुझे कार पर न पहुँचाओगे ?

पुरुष—(फिर घड़ी निकालता और उसे पोंछता है) असम्भव ! तुम अब मिसेज़ निहाल का इन्तज़ार करो ।

[पुरुष जल्दी से भीतर चला जाता है, स्त्री वहीं बाहर की तरफ़ घूरती हुई बैठी रहती है । थोड़ी देर में पुरुष भीतर से आता है, बगल में पुराना फ़्लेट हैट दाबे हाथ के छोटे डण्डे को रुमाल से पोंछ रहा है ।]

पुरुष—१०-१५ पर तुम स्टेशन आ जाओगी, वहाँ से मिलखा-राम तक का रास्ता है ५ मिनट का, १०-२०, यानी १०-३० तक तुम यहाँ होगी, यानी १०-४० तक हम-तुम यहीं इसी टेबुल पर डिनर के लिए बैठे होंगे ? मैं स्टेशन आ जाता, लेकिन मिस मिचर— तुम व्यर्थ जलोगी । (भट्ठी हँसी हँसता है, स्त्री पर जैसे इसका कोई असर नहीं होता) अच्छा, चीरियो !

[सीढ़ियों पर से तेज़ी से उतरता हुआ चला जाता है । स्त्री वैसे ही बैठी रहती है, फिर अनमनी भीतर उठकर चल बेती है । स्टेज पर एकबारगी अंधकार हो जाता है । बीच में दो बार रोशनी

होती है, जिसमें पूरे सीन में खाली मेज़, और कुर्सियाँ दिखलायी देती हैं। घड़ी जिसमें पहले ८-३० बजा है फिर ९।]

दूसरा दृश्य

[एक मध्यवर्गीय क्लब का कमरा, तेज़ तीखी रोशनी हो रही है। मेज़ों पर ताश और भरी हुई एश-ट्रे बिखरी हैं, कुर्सियाँ भी अनेक चारों तरफ़ तितर-बितर पड़ी हैं। कोने में एक बड़ी फ्रेंच विण्डो (खिड़की) के सामने सोफों पर तीन आदमी बैठे हैं। सीन में सिर्फ़ उनकी पीठें दिखायी दे रही हैं। पास ही एक कुर्सी पर सामने की छोटी मेज़ पर सुरुचि से कपड़े पहने एक युवक बराबर ताश फेंट रहा है। खिड़की के फ्रेम में तारों से खिला हुआ आकाश तस्वीर की तरह जड़ा हुआ है। दीवार की बड़ी घड़ी ८-४५ बजा रही है। कमरे में सब खामोश हैं, पर निस्तब्धता नहीं है।]

पहला आदमी—(आवाज बृद्ध-सी है) न मालूम मैं यह मनहूस ब्रिज का खेल क्यों खेलता हूँ ?

दूसरा—(जम्हाई लेता हुआ) क्या किया जाय, आग्रो कोई और भंडा ऊँचा करें।

तीसरा—यह लांग आते भी तो नहीं। (कुर्सी पर के युवक की तरफ़ घूमकर) देखो जी तुम मिश्रित समाज की चर्चा चलाओ...

[दोनों आदमी घूमकर युवक की तरफ़ देखते हैं। तीनों आदमी मोटे अंधेड़, कीमती कपड़े पहने और अत्यन्त सन्तुष्ट हैं।]

युवक—(भेंपता-सा) मैं कैसे उठा सकता हूँ। हाँ, मेरी पत्नी आती तो मैं ज़रूर ऐसा करता। देखिए उन्हें.....

[तीनों एक बारगी 'हूँ' करते हैं और फिर मुड़ के बैठ जाते हैं और खामोश हो जाते हैं। युवक फिर ताश फेंटने लगता है।]

पहला—(जेब से सिगरेट-केस निकालता है और फिर रख लेता

है ।) चलो भाई चलें, मुझे तो सुबह से ही काम है ।

दूसरा—(मुड़कर घड़ी देखते हुए) यह श्रीचन्द बुत्ता दे गया !

पहला—नहीं भाई, कहीं फँस गया होगा । उसके तो सकड़ी की तरह सौ आँखें हैं !

युवक—वह आर्योगे ज़रूर, मेरी तो दावत कर गये हैं ।

तीनों—(मुड़कर) अच्छा ? और पट्टे की पत्नी आज है नहीं ?

(सब एक-दूसरे की ओर देखते हैं ।)

युवक—अच्छा ! मुझे पता होता तो मैं कभी प्रतीक्षा न करता ।

पहला—इसे—श्रीचंद को देखो, जब वह वकालत छोड़कर व्यापार में आ रहा था, मुझे इसकी सफलता की तनिक भी आशा न थी, पर देखो—आज वह एक कम्पनी का सर्वेसर्वा बन गया है ।

(हँसता है ।)

दूसरा—(जम्हाई लेता और अंगूठियों वाली उँगली से गुटकियाँ बजाता है ।) मैं तो भाई दिन-ब-दिन मानता जाता हूँ कि भाग्य भी कोई चीज़ है ।

[युवक ताश रखकर एकाग्र हो, इन लोगों की बातें सुनता है ।]

तीसरा—(उठ खड़ा होता है) आओ भाई, चलो । आइए मिस्टर सहाय, आपको कार पर छोड़ आऊँ । घर तक.....

पहला—बैठो न, श्रीचंद आता ही होगा ।

युवक—और आपसे भी तो उन्होंने कार में छोड़ आने के लिए कहा था ।

तीसरा—(बैठते हुए) हूँ, हूँ, तब तो रुकना ही पड़ेगा ।

(युवक कोई भी बात शुरू करने का इरादा करता है ।)

युवक—आज मेरठ षड्यन्त्र का मामला शुरू हो गया ।

तीनों—क्या ? अच्छा !

[तीनों ऐसी बातों की तरफ़ से उदासीनता दिखलाना चाहते हैं ; पर कुछ असफल-से हो रहे हैं ।]

पहला—श्रीचन्द ने इनके बारे में ख़ूब कहा !

(हँसता है । सब उसकी तरफ़ देखकर सुनना चाहते हैं ।)

पहला—(कोट का कालर ठीक करते हुए) मेरे साथ कमिश्नर से मिलने गया, उन्होंने मेरठ की बात चलायी । आप छूटते ही हिन्दुस्तानी में—हिन्दुस्तानी में बोले—अरे साहब, इनको तो ऐसे ही छोड़ देना चाहिए, यह तो हम लोगों के खिलौने हैं ।

[तीनों फैशनेबल हँसी हँसते हैं, युवक भी उसमें शामिल होता है ।]

दूसरा—हर देश, हर सरकार के सामने समस्या सिर्फ़ यही है कि किम तरह उसके कर्ग कम-से-कम किये जा सकते हैं । आप कर कम कर दीजिए, प्रजा अपने-आप सम्पन्न होगी ।

पहला—हम लोगों-सा कोई बेसरोकार आदमी रुस जाकर देखे कि ! इन शरीफों ने वहाँ क्या कर दिखाया है कि दुनिया भर को रुस के सामने हेय समझते हैं !

तीसरा—यानो, खुदा तक को !

[फिर तीनों ऊबो-सी हँसी हँसते हैं । बाहर कुछ खटका-सा होता है । सब लोग बाहर की तरफ़ देखते हैं । पहले सीन का परिचित पुरुष संतोष और लापरवाही से आता है ।]

पुरुष—(अपना हैट और डंडा एक खाली मेज़ पर रखते हुए) तो तुम लोग मेरा इन्तज़ार कर रहे थे ! ब्रिज ख़त्म कर दिया ?

दूसरा—(कमरे के बीच में आते हुए) आज सहाय फिर हार गये ।

पुरुष—(हँसता हुआ) सहाय तुम बड़े हरैले हो !

[अब सब अपनी जगहों से उठकर कमरे के बीच में आ गये हैं ।]

पहला—जीत तो सब तुम्हारे हिस्से में पड़ी है !

पुरुष—अरे भाई, क्या जीत, क्या हार ? यहाँ तो इसका कभी सपने में भी खयाल नहीं करते । हम तो ईमानदारी से जीना जानते हैं । मैं फिर कहता हूँ, जीवन एक कला है और सबसे बड़ी कला !

दूसरा—(जम्हाई लेते हुए) चलो भाई, बड़ी देर हो गयी । (सब घड़ी की तरफ देखते हैं, पुरुष फिर अपनी सोने की घड़ी निकालता है और उसे पोंछता है ।) चलो, घर तक छोड़ना पड़ेगा !

[तीनों भीतर जाकर अपना हैट लेते हैं, केवल युवक नंगे सिर है ।]

पहला—यह चौकीदार न जाने कहाँ मग गया है !

दूसरा—कहता है ? क्या खूब ! क्या नयी पत्नी कर लाया है ? ज़रा मोचो नयी पत्नी !

[सब जवानों की तरह हँसते हैं, सिर्फ युवक कुछ भेंपा-भेंपासा है और सबसे पीछे बाहर जाता है । बाहर बरामदे से दो या तीन बार आवाज़ आती है 'चौकीदार !' फिर मोटरों के स्टार्ट होने की और फिर खामोशी । स्टेज पर अंधेरा हो जाता है, पर बीच में दो या तीन बार रोशनी होती है और किसानों का-सा बुझा हुआ चेहरा लिये एक चौकीदार मेज़ भाड़ता और जले हुए सिगरेट बीनता हुआ दिखायी देता है ।]

तीसरा दृश्य

[पहले सीन के कमरे का बरामदा, लम्बा और साधारण से ज़रा ऊँचा । खम्भों के पास बड़े-बड़े पाम रखे हैं, खम्भों पर

बेलें भी फैली हैं, दरवाजे सब बन्द हैं, जिनके सामने तीन-चार बेमेल कुर्सियाँ पड़ी हुई हैं। सीढ़ियों पर एक बड़ा भबरा कुत्ता लेटा है। दृश्य के शुरू में कोई आदमी नहीं दिखलायी देता, पर तत्काल ही गृहस्वामी और युवक जो क्लब से आ रहे हैं, सीढ़ियों पर चढ़ते दिखायी देते हैं। कुत्ता सिर उठाकर धीमी जानकारी से गुराँता है, फिर पूँछ हिलाता हुआ पीछे-पीछे दौड़ता बरामदे में लेट जाता है। स्टेज पर कम-से-कम रोशनी है।]

पुरुष—(मेहनत से चढ़ते हुए) तो यह कहिए ? (जब टटोलता है) रुकिए.....

[पुरुष एकबारगी सीढ़ियों से उतरकर बंगले के पीछे की तरफ जाता है। युवक वहीं खड़ा होकर उसकी ओर उत्सुकता से देखकर मुस्करा रहा है। शीघ्र वह फिर वापस आ जाता है और उतावली से जब टटोलता है।]

पुरुष—अब्र यह नहीं पता, मेरी पत्नी चाभी मुझे दे गयी या कहीं गव्व गयी ? नौकर...मैं कहता हूँ कि मेरी ज़िन्दगी में अगर कोई सुर बेसुरा है तो यह नौकर। छुट्टी-छुट्टी-छुट्टी, रोज़-रोज़ इनको छुट्टी चाहिए, कम्बख्त यह नहीं जानते.....

[युवक सहसा एक कुर्सी खींचकर बैठ जाता है। पुरुष स्विच टटोलकर बत्ती जला देता है और फिर दूसरी कुर्सी पर ठीक युवक के सामने बैठ जाता है।]

पुरुष—(एकबारगी हँसता हुआ) अगर स्विच कमरे के भीतर होता तो लुप्त आ जाता !

युवक—खैर यहाँ भी तो आराम से बैठे हैं।

पुरुष—शायद ६-३० बजा है, (घड़ी निकालता है। और उसे पोंछता है) ६-२७, खैर, मेरी पत्नी यहाँ १०-३० तक आ जायगी। खाना वह साथ ही लायगी। (जम्हाई लेता है) और कहिए।

युवक—(उत्साह से) मुझे कोठी तो ख़ैर मिल गयी.....

पुरुष—(जूते को फटफटाते) ख़ैर, कोठी-ओठी तो है, आपने यह नहीं बताया कि आपने शादी क्यों नहीं की ?

युवक—(कठिनाता से) नहीं ही की—नहीं का कोई कारण तो है नहीं ।

पुरुष—(मुस्कराता है) मैं सच-सच कहता हूँ, मैं आप जवान आदमियों को देखकर कई बार बहुत खुश होता हूँ ।

युवक—(जैसे इसके लिए बिल्कुल तैयार नहीं है) जी हाँ ।

(हँसता है ।)

पुरुष—(सम्हलकर) नहीं । मैं आपसे दिल्लगी नहीं कर रहा हूँ । आप लोग हमसे एक पीढ़ी आगे हैं, पर अगर आपसे हिसाब माँगा जाय तो आपके पास क्या है ? आप मुझे बताइए, आप लोगों ने दुनिया को क्या दिया ? मैं वैज्ञानिक आविष्कारों की बात नहीं करता, उसकी तो एक पूरी स्कीम है, जिसमें पीढ़ियों और समाज का कोई दखल ही नहीं है, वह तो प्रकृति धीरे-धीरे अपने-आप पूरा कर रही है । मैं जानता हूँ, आप मेरे विचारों को दकियानुसी समझ कर मन-ही-मन हँस रहे हैं, लेकिन भाईजान, आपने कौन-से तीर मारे हैं ? आप बताइए ?

युवक—ज़िंक तो शादी का था ?

पुरुष—हाँ, हाँ, शादी को ही लीजिए । आप मानते हैं कि हर एक आदमी को जाति की ज़िन्दगी में दाखिल होना ज़रूरी है । जैसा मैं प्रायः कहता हूँ कि दुनिया माँके की दुकान है और हर एक बालिश आदमी का कर्तव्य है कि उसका साभेदार हो । अगर इस कोशिश में आप अपनी जान नहीं खया देते, तो आप मनुष्य कहलाने का कोई हक़ नहीं रखते । (उत्तेजित होकर) मैं कहता हूँ, सब पुस्तकें ग़लत हैं, सब झूठी हैं !

युवक—मैंने तो शादी नहीं की—नहीं की कि मैं शायद कभी भी औरत का दिमाग.....

पुरुष—भाईजान, शादी एक गहरी समस्या है, आप उसके साथ ग्विलवाड़ नहीं कर सकते। मैं पूछता हूँ, आप एक फैक्ट्री में तो हर तरह का विज्ञान, कानून, विशिष्ट ज्ञान लगाते हैं। फिर क्या कारण है कि जीवन को ऐसे परमात्मा के भरोसे छोड़ दिया जाय कि उसमें आदमी की सस्ती-से-सस्ती और निकम्मी-से-निकम्मी शक्तियाँ ही सिर्फ काम में लायी जायँ ! आप कहते हैं, मैं औरत को समझ नहीं पाता। जनाब, यह सब कोगी बातें हैं, बातें ! समझने की क्या ज़रूरत है ? मशीन की एक पली दूसरी पली को नापने, जोखने, समझने नहीं जाती। स्त्री-पुरुष तो जीवन की मशीन के दो पुरज़े हैं—दो !

युवक—यह फैक्ट्री और मशीन की भी एक ही रही ?

पुरुष—नहीं साहब, आप मुझे देखिए, मेरी पहली पत्नी थी। कम्बल को हमेशा मुझसे शिकायत रही, लेकिन उसकी बीमारी में जब मैं प्रतिक्षण उसके मिरहाने रहा तो मेरा नाम गटती हुई मरी। अब यह मेरी दूसरी पत्नी है। हमारे बच्चे नहीं, यानी इस पत्नी के। हम लोग क्लबों में साथ-साथ नहीं जाते, हफ़्ते में एक बार सिनेमा देखते हैं, पहाड़-जंगल जाने का मेरे पास वक्त नहीं, पर हम लोग बेहद खुश हैं—कभी हम में कोई भेद-भाव हुआ ही नहीं। मैं कहना चाहता था कि दोनों ने अपनी-अपनी जगह को समझ लिया है और वहाँ हम लोग अडिग हैं। वह बीमार पड़ती है, मैं डाक्टरों से घर नहीं भर देता; मैं बीमार पड़ता हूँ, वह रोती-धोती नहीं। मैं क्या कहूँ ? मैं जानता हूँ, इस वक्त मेरी पत्नी स्टेशन के बुकस्टाल पर कौन-सी किताब देख रही है। मैं जानता हूँ, वह स्टेशन पर गाड़ी से दस मिनट पहले पहुँच जाती है।

युवक—पर मान लीजिए, मशीन का एक पुरज़ा बिगड़ जाय।

पुरुष—(हँसता हुआ) तो पुरजा बदल डालिए, स्वयं बदल जाइए । किताबें ? मैं आपको बताऊँगा, किताबें क्या हैं ? मैंने रूई के व्यापार पर एक छोटी-सी पुस्तक लिखी । वही सब बातें लिखी जो लोग रोज़ मानते थे । और जिनकी चर्चा करते रहते थे । नतीजा यह हुआ कि किताब की धूम मच गयी, पर उन्हीं उम्मीदों को जिनकी मैंने बकालत की, काम में लाने की बात मैं स्वप्न में भी नहीं सोचता ।

[पुरुष सहसा यह आशा करके कि युवक कुछ कहेगा, चुप हो जाता है । युवक सिर झुकाये हुए खामोश है । कुत्ता इतना शोरगुल सुनकर पास आकर खड़ा हो गया है । कुछ देर के लिए खामोशी हो जाती है ।]

युवक—(सिर उठाकर) कैवट्टी, पुरजा, वाकई यह खूब रही !

[पुरुष कुछ कहने के लिए तैयार होता है, पर सहसा फाटक खटकता है और कुत्ता भौंकते हुए दौड़ता है । वह कुत्ते को बुलाता है और बरामदे के किनारे खड़े हो कर ज़ोर से पुकारता है । एक चपरासी हाथ में बाइसिकल थामे आता है और मलाम करके जेब में से एक लिफाफा निकालकर देता है और फिर सलाम करके खड़ा हो जाता है ।]

पुरुष—क्या है, तुम कौन हो ? (लिफाफा लेकर अपनी घड़ी की चेन के चाकु से उसे खोलता है—राशनी की तरफ़ जाता है ।) ऐं !

चपरासी—मैं निहाल साहब का ड्राइवर हूँ, मेम साहब ने कहलाया है, वह कल आयेंगी !

पुरुष—(खत पढ़ना छोड़कर) कल आयेंगी ? ऐं ! तुम्हें क्या मालूम ?...

चपरासी—सब मेम साहब वहाँ रहेंगे, मोटर वापस कर दी; मुझे से कहा.....

पुरुष—(टहलते हुए उतावली से) और खाना, मकान...और कार

मेरी मिलखीराम के पम्प पर खड़ी है !

[चपरासी फिर सलाम करता है और चल देता है, थोड़ी दूर चल कर कहता है :]

चपरासी—दुजूर, आपका कुत्ता बड़ा पानीदार है। अंग्रेजी है ?

पुरुष—(हताश भाव से) आग्विर - आग्विर, हूँ ।...

युवक—(उठते हुए) आइए, मेरे होटल में आइए, आपकी फ्रैक्टी में तो आज स्ट्राइक हो गयी !

पुरुष—मैं कहता हूँ, मेरी कार मिलखीराम के पम्प पर खड़ी है ।

(फिर खत बत्ती के नीचे ले जाकर पढ़ता है ।)

[द्वाप]

श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र

पण्डित लक्ष्मीनारायण मिश्र आधुनिक हिन्दी नाटक के जनक कहे जा सकते हैं। सं० १९६० (१९०३ ई०) में जन्म ले कर आपने १९२८ में बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में डिग्री ली। आप को लिखने का शौक लड़कपन ही से था। स्कूल ही में आपने 'अन्तर्जगत' लिखा, जो मिश्र जी की आरम्भिक कविताओं अथवा पद्यों का संग्रह है। इण्टर में पढ़ते थे, जब आपने अपना पहला नाटक 'अशोक' लिखा। ये दोनों पुस्तकें विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में लगी रही हैं।

श्री मिश्र इब्सन के समस्या-नाटकों से बड़े प्रभावित हुए। आपने इब्सन के नाटक 'डॉल्ज हाऊस' और 'पिलर्ज आफ़ दि सोसाइटी' का अनुवाद भी किया। फिर 'संन्यासी' और 'सिन्दूर की होली' लिखकर हिन्दी में समस्या नाटकों का सूत्रपात किया। आपके एक नवीन नाटक 'नारद की वीणा' पर आपको उत्तर-प्रान्तीय सरकार ने १००० का पुरस्कार भी दिया है।

मिश्र जी आल इंडिया रेडियो इलाहाबाद में काम भी कर चुके हैं और तभी से आपकी रुचि एकांकियों की ओर हुई और आपने कुछ बड़े सुन्दर एकांकी लिखे हैं।

इब्सन से प्रभावित होकर भी श्री मिश्र भारत और उसकी प्राचीन संस्कृति के प्रेमी हैं। राष्ट्र, जाति और व्यक्ति के अहम् में आपका अटल विश्वास है। नारी को भारत में वे फिर सीता और सावित्री के रूप में देखना चाहते हैं, जब वह चुनी न जा कर चुनती थी, बरी न जा कर बरती थी। प्रस्तुत एकांकी उनकी नाटक कला और विचारधारा का बड़ा उत्तम नमूना है।

रचनाएँ

कवितासंग्रह :—अन्तर्जगत ।

नाटक :—अशोक; संन्यासी; राक्षस का मन्दिर; मुक्ति का
रहस्य; राजयोग; सिन्दूर की होली; आधीरात;
गरुडध्वज; नारद की वीणा; वत्सराज ।

काव्य :—सेनापति कर्ण ।

एक दिन*

पात्र

राजनाथ	:	पिता
मोहन	:	पुत्र
शीला	:	पुत्री
निरंजन	:	पुत्र का मित्र

[देहात के किसी गाँव में खपरैल का मकान । माटी की दीवारें चिकनी कर चूने से लीपी गयी हैं । आगे की ओर काठ के खम्भों पर बना ओसारा । खम्भे काले पड़ गये हैं, उनके रंग से ही उनकी आयु फूट रही है । उनका हीर इतना सूख गया है कि जगह-जगह टेढ़ी-मेढ़ी दरारें पड़ गयी हैं । जाति का गुण और बल और कहीं माना जाय या नहीं, इन खम्भों की लकड़ी में तो ठोस है । ये शीशम के खम्भे अपनी टेक में पत्थर का कान काट रहे हैं । भीतर जाने का पुराना द्वार दायीं ओर से पड़ता है । इससे हटकर तीन नये किवाड़ इस समय के हैं जो अपनी बनावट, लकड़ी

*प्रस्तुत नाटक नेहरू-अभिनन्दन ग्रंथ में छपा है और लेखक की अनुमति के पश्चात् बिया जा रहा है ।

और पत्नों से इस नये युग की बस यही इतनी छाप इस घर पर लगा रहे हैं। इस नये युग का सब काम जब यह पुराना घर न दे सका, तब बैठक के लिए यह एक कमरा बना लिया गया। भीतर की इतनी जगह ले ली गयी। इस कमरे में एक ओर पलंग पर बिछावन बिछा है। नीचे कच्ची धरती पर नयी दरी पड़ी है। दूसरी ओर देहाती बढई की बनायी भोंडी मेज़ के तीन ओर बेंत की तीन कुसियाँ और दीवारों पर कुछ नये-पुराने सस्ते चित्र हैं। ऊपर बाँस के फट्टों में कील लगाकर रंगीन चाँदनी लगी है। मेज़ के पीछे एक किवाड़ दालान में होकर भीतर जाने का है।

भीतर की ओर से राजनाथ का प्रवेश। ऊँचा पुष्ट शरीर। ललाट पर रेखाएँ। बाल गंगा-जमुनी, भवें तनों और लम्बी; आँखों में लाल डोरे। साँस कुछ बढ़ी चाल में है। एक कुर्सी खींचकर बीच वाले द्वार के सामने धम्म से बैठ जाते हैं। तीन बार हथेली से ललाट पीट लेते हैं; फिर हाथ खट्ट से कुर्सी की बाँह पर गिर पड़ता है।]

राजनाथ—चक्रनेमिक्रमेण...चक्र की इस गति को मैंने गोकना चाहा ! यह उसी का दंड है। बड़े बने रहने के मोह में मैंने पूर्वजों की मर्यादा मिटा दी। आँधी के वेग में एक-एक पत्ते, हर डाल-टहनौ के साथ, धरती पर जड़ के साथ आ जाना मैंने नहीं चाहा और अब टूट हूँ। मोहन !...मोहन...!

मोहन—जी आया (उसी द्वार से प्रवेश। प्रायः बीस वर्ष की अवस्था का युवक। रेशमी कमीज और उजली धोती। आँख धरती की ओर, संह पर भय की छाया) जी इसमें थोड़ा.....

राजनाथ—कभी नहीं। जो हो गया...जन्म भर उसी में जलता रहूँगा। पाँच पीढ़ी की बात जानता हूँ, अस्ती के नीचे कोई मरा नहीं। मेरे अभी पचपन हैं। उन-सा सुखी नहीं रहा, फिर भी अभी पन्द्रह बरस तो चलेंगे ही।

मोहन—कितनी बड़ी समस्या से पिंड छूटेगा ? झूठी मर्यादा !

अमनी लड़की का सुख आप नहीं देखते ।

राजनाथ—गोली मार दो तुम मुझे । उस सुख से बड़ा सुख मिलेगा मुझे इस में । वंश की मर्यादा तुम्हारे लिए झूठी हो गयी, जिसे बचाने में सब कुछ चला गया ! बाप दादों का घर भी चला गया । जिस घर में पैदा हुआ, खेला-कूदा, बड़ा हुआ...जिसमें तुम्हारी माँ आयी, तुम भी जिसमें जनमें थे, उसके नीलाम डुगगी से भी प्राण उनना नहीं बिंधा था जितना आज बिंधा है ।

मोहन—सब कहीं यह हो रहा है...बड़े-से-बड़े घरों में...बिना कन्या देखे विवाह अब बड़े घरों में नहीं होता ।

राजनाथ—मो तो तुम कर चुके । विप का घूट तो मैं पी गया, दूसरा न पीऊंगा ।

मोहन—मैं नहीं समझता, अब इस युग में इसमें बुराई क्या है । वर अपनी रुचि की कन्या चाहता ही है, फिर भी ऐसा वर जो...

राजनाथ—जो एम० ए० में पढ़ रहा है । बड़े बाप का बेटा है । जिसका बाप नामी वकील है, जो कभी भी हाईकोर्ट का जज हो सकता है; जिसकी कोठियाँ हैं, मोटरें हैं, हटो-बचो जिसके यहाँ लगा है, क्यों...?

मोहन—हाँ, तो इसमें झूठ क्या है ? क्या उस परिवार में शीला सुखी न होगी ? कन्या के प्रति आपका जो कर्तव्य है उसे देखिए । लड़कियों का कभी यहाँ स्वयंवर होता था । यह भी इसी देश की मर्यादा है ।

राजनाथ—इस देश की क्या मर्यादा है, तुमसे न सीखूंगा । उसे सीखने को किसी विलायती प्रोफेसर के पास भी न जाऊंगा । वह तो जिस तरह मेरे पूर्वजों के रक्त के रूप में मेरे इस शरीर में है, उसी तरह संस्कार के रूप में मेरे मन में है ।

मोहन—अच्छी बात । तो फिर आप जानें...

राजनाथ—इस तरह धमका कर नहीं वेदा ! झूठा भय और झूठा इतिहास...इस तुम्हारे नये युग में बस यही दो बातें हैं ।

मोहन—क्या कहते हैं ?

राजनाथ—लड़कियों का स्वयंवर यहाँ होता था, पर चुनता कौन था, कन्या या वर ? एक कन्या के लिए सैकड़ों युवक आते थे । रूप, गुण और पौरुष में जो बढ़ा होता, उस कन्या चुनती । जयमाला जिसके गले में पड़ती, वह अपने भाग्य पर फूल उठता । उस युग में कन्या की यह मर्यादा थी, आज क्या है ? स्त्री जाति जितने नीचे पिछले दस वर्षों में गयी है, उतनी पहले कभी नहीं गयी थी ।

मोहन—तो यही झूठा इतिहास है ।

राजनाथ—यही, और तुम अब कहते हो—मैं जानूँ और मेरा काम जाने । यह भय तुम दिखाते हो । जैसे मेरी लड़की के भाग में कुछ है ही नहीं । तुम उसके लिए भाग्य गढ़कर लाये हो । तुम्हारे साँचे का भाग्य या तो मैं मान लूँ और नहीं तो फिर मेरी लड़की दुख उठायेगी ।

मोहन—भाग्य मैं नहीं मानता । परिस्थिति सब कुछ करती है । निरंजन इस भयानक गर्मी में नैनीताल में होता । इस गाँव की धूल में स्टेशन से तीन मील पैदल न चला होता ।

राजनाथ—(हँसकर) तुम्हें उसका कृतज्ञ होना चाहिए । वह तुम्हारे लिए तीन मील पैदल आ गया । नैनीताल का निवासी इस ठेठ देहात में ! इन्हीं देहातों से वह धन जाता है, जिसे निरंजन का बाप नैनीताल में खर्च करता है । राम, लक्ष्मण और जानकी को कितना पैदल चलना पड़ा था मोहन ! नंगे पैर गौतम कहाँ-कहाँ घूम आये थे ।

मोहन—आप तो बस वही आदर्श के सपने देखते हैं ।

राजनाथ—बिना इन सपनों के मनुष्य दरिद्र हो उठेगा । इन्हीं से हम धनी हैं मोहन ! इतिहास पढ़ते हो तुम एम० ए० में और वह

निरंजन भी । निकाल दो इतिहास से इन सपनों को, देखो वहाँ फिर क्या बचता है ? फिर भी इतिहास का एक ही पाठ है ।

मोहन—इस समय प्रसंग क्या है और आप...

राजनाथ—इस समय का प्रसंग भी इतिहास से जुड़ा है...मेरे... मेरे पूर्वजों के...निरंजन और उसके पूर्वजों के इतिहास से यह प्रसंग भी जुड़ा है । जो बहुत बड़े बन जाते हैं, प्रकृति उन्हें ठिकने नहीं देती । मेरी जो दशा आज मान पीढ़ी के बाद है, निरंजन की दूसरी ही पीढ़ी में होगी । यही इस जगत का चक्र है । ऊपर का बिन्दु नीचे और नीचे का बिन्दु ऊपर ।

(दोनों हाथों को घुमा कर तर्जनी से परिधि बनाते हैं ।)

मोहन—तो इस समय मैं जाऊँ । आपका चित्त.....

राजनाथ—ठिकाने नहीं है ! पुत्र कह रहा है, पिता का चित्त ठिकाने नहीं है ! तुम्हारे विचार मुझसे नहीं मिलते, इसलिए मैं पागल हूँ । तुम्हारे शब्दों में, तुम्हारे इस युग में, इस देश की नयी पीढ़ी बोल रही है, जिसका विश्वास अब अपनी जड़ों में नहीं है । (उसकी ओर एकटक देखकर) नहीं समझ रहे हो ?

मोहन—जमा करें, यदि मुझसे—इधर बरसों से आपको चिन्तित और व्यग्र देवता रहा ।

राजनाथ—उसके लिए इतना सीधा, इतना सस्ता उपाय खोज लिया । आज के पत्रों, पुस्तकों में ऐसे ओछे काम बहुत मिलते हैं । बाप को पापा और माँ को ममी लिखने वाले तुम्हारे लेखक उत्तेजना और आवेश बहुत दे रहे हैं, बस विवेक की ओर नहीं देखते । नहीं तो फिर नंगे साहित्य का व्यापार वे न चला पायेंगे । वह जो एकांकी-संग्रह तुमने कल यहाँ (मेज़ की ओर संकेत कर) रख दिया था...क्या नाम है उसका ?.....ऊँह !.....उसमें एक नाटक में साइकिल लेकर पापा आफ्रिस चले जाते हैं, दस बजे सवेरे और दो बजे दिन में ममी लंच की

चिन्ता में सुनायी पड़ती हैं और फिर सारा दिन और आधी रात तक न कहीं पाया हैं, न कहीं मसी हैं उस घर में, वस एक ही व्यापार चल रहा है—कुमारियों और उनके प्रेमियों की प्रेम-लोला। यूरोप और अमेरिका में भी इतना मद नहीं, जिसमें यह देश डूब रहा है।

मोहन—तो आपका कहना है कि मैं निरंजन को यहाँ ले आया, किसी ठोस कार्य के लिये नहीं। यदि यह हो जाय तो इसका सुख आपको न होगा ? शीला रानी बनकर न रहेगी ?

राजनाथ—यही मुझे डर है। रानी बनाने के मोह में कहाँ तुम उसे बोर न दो। जहाँ आरम्भ ही अशुद्ध है, वहाँ अन्त क्या शुद्ध होगा ? और इन दो दिनों में निरंजन ने उसे कई बार देखा। तुम्हारे साथ उसने उसे भी भोजन कराया, जलपान कराया। बिना संकोच के जैसे वह तुम्हारे सामने रही है, वैसे उसके सामने भी रही।

मोहन—यही तो नहीं रहा। कल दिन में जब वह मोकर उठा, कई बार वह उसका नाम लेकर बुलाता रहा। एक गिलास पानी के लिए वह उसके पास नहीं गयी। क्या कहेंगे आप, यह उसका अपमान नहीं हुआ ? वह तो रात ही जाने को तैयार था। मैंने बड़े आग्रह से उसे रोका और कहा कि बच्ची है, जाने दो।

राजनाथ—और अब वह उससे अकेले में बात कर निर्णय करेगा। उसकी परीक्षा लेगा कि वह उसके योग्य है या नहीं और तब उसे स्वीकार कर तुम्हें कृतार्थ करेगा या कह देगा नहीं जी मुझे पसन्द नहीं। नौकर से पानी न माँगकर उसने तुम्हारी बहन से माँगा !

मोहन—ऐसी इच्छा उसकी स्वाभाविक थी। समय बदल गया। मैंने कहा भी कि उसे किसी लड़कियों के स्कूल ही धरा दें। आप रामायण महाभारत पढ़ाते रहे, उसका परलोक बनाने के लिए। यह लोक बने या न बने। उसके सामने जाने में उसे लाज लगती है... एक गिलास पानी या दो बीड़े पान लेकर। जैसे उसका जन्म इस बीसवीं सदी

मे नटा, सोलहवीं या पन्द्रहवीं में हुआ हो ।

राजनाथ—हूँ, तो इस युग की लड़की में आत्म-सम्मान नहीं है । वह उन पुरुष के चारों ओर भँवर देती हैं जो उन्हें देखकर, बातें कर, बड़ी कृपा से अपनी स्त्री बनाना चाहता है । नीच ! एक शब्द भी मरी लड़की के विरुद्ध कहा तो जीभ खींच लूँगा । उसके शरीर में मेरा, मरी उन सात पीढ़ियों का रक्त है, जो सम्मान के लिए मर मिटीं । तुम्हारे ऐसे पुत्र से वह पुत्री भली, जिसने कम-से-कम अपना, अपन माँ-बाप का सम्मान तो रखा । रामायण और महाभारत पढ़कर जो वह असभ्य या अपढ़ है, उसका पता तब चलेगा जब किसी दिन तुमसे वह बातें करेगी । और ठीक है, करेगी वह एकान्त में बातें तुम्हारे इस देवता से—मन और बुद्धि के नहीं, धन के देवता से ।

माहन—नहीं, जाने दीजिए । मैं उसे अभी स्टेशन पहुँचा आता हूँ ।

राजनाथ—अभी नहीं । बैठ जाओ वह कुर्सी लेकर, तुमने पत्र में लिखा था, तुम्हारे एक मित्र निरंजन कुमार देहात देखना चाहते हैं । मैंने लिख दिया, लिवा लाओ ! जिस घर के अतिथि किसी समय नवाब आसफुद्दौला रह चुके थे, कुँवरसिंह और अमरसिंह मत्तावन वाले विद्रोह में जहाँ तीन दिन अपने सिपाहियों के साथ पड़े रहे, इस बिगड़े समय में भी तुम्हारे एक मित्र का सम्मान वह कर सकता है । मुझे क्या पता था कि तुम स्वार्थ की इस निचली तह में उतर जाओगे । विवाह के पहले तुम्हारी बहन को कोई उस आँख से देखे और तुम फोड़ न दो ।

मोहन—पर उसने किसी ऐसी आँख से देखा कि.....

राजनाथ—जो काम वह किसी भी नौकर से ले सकता था, वह उसने तुम्हारी बहन से लेना चाहा...केवल इसलिए कि अकेले में वह भर आँख उस देखे, दो बातें पूछे...इसके बाद वह उससे कहता पैर दबाने के लिए.....

(क्रोध से काँपते हैं ।)

मोहन—राम-राम ! कितना अनर्थ कर रहे हैं आप ? शीला के भाग्य में जो होगा, होगा । अब तो इसी क्षण निरंजन यहाँ से चला जाय ।

राजनाथ—इस घर ने बड़े चढ़ाव-उतार देखे मोहन, पर यह कभी नहीं देखा । यह धरती फट जाती और मैं इसमें समा जाता । यही था तो पहले तुमने सुझाये गये ले ली होती ।

मोहन—मैं जानता था लड़की दिखाने को आप तैयार न होते ।

राजनाथ—इस तरह नहीं । श्री चौधरी से जब और मन्त्र वातें तय हो जातीं, मैं उन्हें लड़की दिखा देता, पर निरंजन को कभी नहीं । विवाह के पहले जो लड़का लड़की को स्वयं देखना चाहता है वह असम्भव है, पसन्द करने का अधिकार वह अपना मानता है कन्या का नहीं । तुम जितना समझते हो मैं उतना जड़ नहीं हूँ । प्रगति गंका में नहीं जाता, वस इतना जान लो प्रगति अन्धों की नहीं, अन्ध वालों की होती है ।

मोहन—सामन्त विचार-धारा अभी आपकी नहीं छूटी है । हर बात में आप मर्यादा और आदर्श डाल देते हैं, यहाँ तक कि अपनी लड़की का सुख भी आप नहीं देखते ।

राजनाथ—तोते की रट—सुख, सुख, सुख...जैसे तुम्हारे इस काम से उसका सुख तय हो जायगा । उसकी होनी क्या है...भगवान उसे सुख न देना चाहें तो फिर सोने का अम्बार भी धूल हो जायगा । मैं सामन्त विचारधारा में पड़ा हूँ और तुम धन के मोह में, धन के सामने तुम्हारे लिए बहन का मान भी मिट रहा है । पूँजी वाले बनिये से सामन्त कभी बुरा नहीं होता । मर्यादा और आदर्श की बातें चाहे झूठी भी क्यों न हों, व्यक्ति को नीचे नहीं उतारने देतीं । गीध की तरह डैने खोलकर, वह ऊँचे आकाश में मर जाता है । (काँपकर) कुछ नहीं, तुम यह कहो, तुमने कहा क्या इस निरंजन से ? कैसे तुम्हारी बातें यह

मान गया ? तुमने कहा होगा... अपनी बहन के लिए अपने-आप ही उसे निमन्त्रित किया होगा ।

मोहन—जी नहीं... हम दोनों में परस्पर परिचय और स्नेह बढ़ा । होस्टल में अपनी काम पर यह मुझे बराबर अपनी कोठी पर ले जाता था । जहाँ दूतनी सरलता होती है, घर-परिवार की बात चलती ही है, उसे यह तो पता हो गया था कि मेरे पूर्वज कुछ सौ वर्ष पहले राजा थे । आज हमारा दिन बरे है ।

राजनाथ—यह तुमने कहा, जिसने इससे अच्छे दिन कभी देखे नहीं । पर मैं सब देख चुका हूँ, कभी नहीं कहता कि मेरे दिन बुरे हैं । जिस युग की हम उपज थे, जब वह चला गया तो उसकी उपज कब तक टिकती ? राज्य मिट जाते हैं । बड़े-से-बड़े वीर और जानी किसी दिन मरते हैं, पर उनकी लौ जलती रहती है । व्यक्ति और मनुष्यता का मान बढ़ लो है । तुमने अपने बुरे दिन की बात कही और वह दया से पिघल उठा । जहाँ किसी भी रूप में दया की माँग है, वहाँ व्यक्ति मर जाता है, जीता नहीं । शीला का पता उसे कब चला ?

मोहन—उसके घर में उसकी भी बहन है । उसकी आयु भी शीला की है । इन्हीं वर्षों उसने इण्टर किया है । वह बराबर मुझसे खुलकर बातें करती है । उसकी माँ, चौधरी साहब, उनके व्यवहार में बनावट मुझे कहीं नहीं देख पड़ी ।

राजनाथ—इसलिए कि अभी वे बाढ़ पर हैं । अपनी बाढ़ में वे तुम्हें भी बहा रहे हैं । किसी दिन यह बाढ़ निकल जायगी और पीछे छोड़ जायगी कीचड़ और दलदल । जो तुम्हारे घर हुआ, उनके घर भी होगा । इसलिए जिसे देखो, धन से अलग कर देखो । पद, प्रतिष्ठा और अधिकार से अलग कर देखो । उस मनुष्य को देखो जो तुम्हारे इस युग में जन्म ले रहा है, जो धन और अधिकार से नहीं अपने गुणों से आगे बढ़ेगा । अपने घर की सामन्त भावना के विरोधी निरंजन के

धन की चमक में आँखें न मूँद लो । निरंजन अपने दादा का नाम भी नहीं जानता ।

मोहन क्या ?

राजनाथ—चौकने की बात नहीं । अपने पिता को छोड़कर, अपने कुल की कोई बात वह नहीं जानता । इतिहास की बातें और जो कुछ जानता हो, अपने घर का इतिहास नहीं जानता ।

मोहन—कभी अवसर न मिला होगा । कहे भी कोन उससे ? वकील साहब पाँच बजे सेवेर बैठते हैं, दस बजे तक दम नहीं लेते । स्नान और भोजन में बस बीस मिनट... हाईकोर्ट और लौटकर फिर आधी रात तक । नामी वकील होना भी कम संकट नहीं है ।

राजनाथ—अधिकार के लिए तुम्हारे पूर्वज लड़ते-मरते रहे । उन्हें अधिकार और प्रभुता के लिए जीना था । वकीलों, सेठों को धन के लिए जीना है । समाज का निर्माण तब अधिकार पर टिका था, आज धन पर टिका है । वकील साहब भी केवल अपने पिता का नाम जानते होंगे । उस घर का इतिहास जितना मैं जानता हूँ उसमें अधिक व भी नहीं जानते ।

मोहन—तो आपका परिचय उनसे है ? आप तो मुस्कग रहे हैं ?

राजनाथ—(हँसकर) हाँ...और अब तुम सुन लो । गत निरंजन से बातें कर मैं यह जान गया कि देवनन्दन चौधरी के शरीर में मेग नमक है ।

मोहन—क्या कह रहे हैं आप यह सब...?

राजनाथ—मुझे याद पड़ रहा है । सात-आठ का रहा हूँगा उस समय । रघुनन्दन चौधरी की छगहरी लम्बी देह, गभिन मूँछ, लम्बे काकुल, सिंग पर केसरिया रंग की कत्ती, आँखों में सुरमा और ओंठ पर पान की लाली । अंग्रेजी कलक्टर दौरे में आया था । दो दिन गढ़ी में रहा, रघुनन्दन उन दिनों बाबूजी के मुन्शी थे । रियासत का बही-खाता,

हाकिमों की आवभगत, सब कुछ उनके हाथ में थी। आठ बजे सबेरे बाबूजी के सामने हाथ जोड़कर मिर झुकते थे और फिर रात को भी आठ ही बजे, दिन भर के काम की बात उन्हें बताकर, गद्दी में ही पीछे की ओर अपनी जगह पर चले जाते थे।

मोहन—वकील साहब के कोई सम्बन्धी थे रघुनन्दन चौधरी ?

राजनाथ—उनके साथ थे।...बड़े हँसोड़ और मौके की बात कहने वाले। अंग्रेज़ कलक्टर उनसे इतना प्रसन्न हुआ कि बाबूजी से कह बैठा, वह चौधरी को अपना पेशकार बनायेगा। चौधरी हमें छोड़ना नहीं चाहते। जाने के समय इतना राग कि बाबूजी ने अपने अँगोछे से उनके आँसू पोंछ कर कहा था—जब चाहना यहाँ आ जाना, यह घर तुम्हारा है। चौधरी चले गये, लेकिन उनकी स्त्री और लड़का जो, मुझसे कुछ छोटा था, गद्दी में रहे। कितने दिन, ठीक-ठीक नहीं कह सकूँगा। देवनन्दन मेरे साथ खेलते थे। गद्दी के बाहर जंगल में एक दिन हम दोनों दौड़ रहे थे, देवनन्दन मेरे धक्के से गिर पड़े और यहाँ भाँह के ऊपर एक अंगुल लम्बी हड्डी धँस गयी। है यहाँ उनके कोई चोट का निशान ?

मोहन—(विस्मय में) जी हाँ, है। मुझे बड़ी ग्लानि हो रही है। कह दीजिए, आपने मुझे क्षमा किया। नहीं तो इस दुख से मैं बीमार पड़ जाऊँगा।

राजनाथ—लड़की की तरह नहीं...लड़के की तरह। तुम लोग थोड़ी आँच भी नहीं सह सकते। किस बात का दुख है तुम्हें ? देवनन्दन चौधरी के अनुकूल इस समय भाग्य है। बड़े पेड़ गिरते हैं, उकठ जाते हैं, उनकी जगह नये बढ़ते हैं। यही क्रम है। तुमने भगवान् के लिए कुछ भी नहीं छोड़ना चाहा, यही भूल हुई।

मोहन—तब क्या हुआ ?

राजनाथ—रघुनन्दन चौधरी ने लड़के और स्त्री को बुला लिया।

अपने-आप पेशकार से बढ़ कर डिण्टी हुए। लड़का पढ़ता गया और आज नामी वकील है। कल हाईकोर्ट का जज हो जायगा। सब कुछ मिट सकता है, पर संस्कार की जड़ें जल्दी नहीं उगड़तीं, शीला और निरंजन के संस्कार में अंतर है। निरंजन के धन से वह सुखी हो सकेगी, इसमें मुझे तो सन्देह है। तुम भाई हो, मैं बाप हूँ। उससे इस तपस्य की कोई बात सीधे पूछो तो नहीं बता सकेगी, फिर भी अभी मैंने जो उसे देखा वह किसी चिन्ता, किसी दुःख में थी।

मोहन—इसका कारण मैं हूँ। मैं कल भी उसे दो बात कह गया और आज तो यहाँ तक कहा कि यदि तुम उनसे दंग से बातें न करोगी तो मैं तुम्हारा मुँह न देखूँगा।

राजनाथ—सगी बहन के साथ तुम जैसा व्यवहार करो, पर इतना जान लो, उपन्यासों और कहानियों से संसार नहीं चलता। तुमसे जो यह जाल बिछाया उसे अब तुम न समेट सकोगे। यह काम अब मुझे करना पड़ेगा। जो मैं नहीं चाहता, वही करना होगा। मेरी बेटी इस घर में दुखी न रहे, यह तो मैं कर सकता हूँ। मेरा विश्वास, मेरा स्नेह उसका बना रहे। पिता के धर्म में मैं खोटा न बनूँ। जाओ, उसे भेज दो। उसे समझा कर, समझूँगा तो फिर निरंजन से भी मैं ही.....

मोहन—अभी कुछ नहीं बिगड़ा है बाबू जी...निरंजन चला जाय, मेरी बहन किसी दूसरे घर जायगी, जिसका इतिहास, संस्कार इस घर से मेल खाये।

राजनाथ—सामान्त भावना में अब तुम आ रहे हो। जो मर गया उसे जिलाने की चेष्टा अब पाप है। कुल और वंश के अभिमान को भूल जाओ और भूल जाओ कि निरंजन के पूर्वज कभी तुम्हारे आश्रित थे। भाग्य कभी तुम्हारे साथ था, आज उनके साथ है। जाओ भेज दो शीला को। उसका संयोग जिसके साथ होगा, लाख चेष्टा पर भी न रुकेगा। मैं भाग्यवादी हूँ। इस अवस्था में इतने चढ़ाव-उतार के बाद कोई भी

भाग्यवादी हो जाता है ।

[मोहन का प्रस्थान । राजनाथ कुर्सी से उठकर पलंग पर पड़ रहते हैं और तकिये में मुँह छिपा देते हैं । शीला का प्रवेश । भारी आँखें, पलकें गिरती नहीं । सुन्दरता के अमृत में विषाद का विष मिल गया है, उसके चलने की आहट नहीं होती । आँचल से आँखें पोछती है ।

शीला—(भरे कंठ से) आ गयी मैं—बाबू जी । आप काँप रहे हैं । मैं मर गयी होती, आप रोते तो नहीं ?

[तकिया हाथ से खींच कर उनकी छाती पर सिर रख कर सिसकने लगती है ।]

राजनाथ—(झटके से उसे सम्हाल कर बैठते हुए) बेटी के लिए बाप कब नहीं रोया ? नहीं, देखो, सुनो भी । जानकी के लिए विदेह जनक रोये थे । मैं रोया तो कोई बात नहीं । न मानेगी, तुमसे कुछ पूछना है ।

शीला—आप क्या नहीं जानते मेरा ? आप से मेरा कुछ छिपा है ? भैया नहीं जानते, मेरा मुँह नहीं देखेंगे ।

राजनाथ—उसका मुँह मैं नहीं देखता, पिता का प्राण जो इस देह में न होता । फिर भी वह तुम्हें सुखी देखने के लिए.....

शीला—सुखी देखने के लिए मुझे इतना बड़ा दुःख आप के जीते जी ? वे अपने घर के बड़े होंगे, इस घर की बड़ी मैं हूँ । आपके पास धन नहीं है, पर क्या भाव भी नहीं हैं मेरे लिए ? किसी पेड़ के नीचे...झोंपड़ी में मैं सुखी रहूँगी । जानकी के चौदह वर्ष वन में बीत गये । मैं क्या हूँ ? जिसका संग हो उसका विश्वास और आदर मिल जाय, इससे बड़ा धन सोने-चाँदी में लिपटना नहीं है !

राजनाथ—वह युग नहीं अब रहा बेटी । इस देश में अब जानकी की नहीं...क्या कहूँ ? किसकी बात चलेगी ?...होगी वह कोई विदेश

की नारी, पुरुष को धक्का देकर बढ़ने वाली । बैंक में उसकी लम्बी रकम होगी ।

शीला—उससे उसे पूरा मुक्त मिलता होगा । सचमुच पति की आँख-मे-आँख गड़ा कर वह देखती होगी ?

राजनाथ—इस युग में हम अपना सब कुछ विदेशी आँखों से देख रहे हैं । स्वतन्त्रता का उत्सव हम मना रहे हैं अपने को भूल कर, अपने गुण और अपनी मान्यताओं को भूलकर । आगे चलने में जो पीछे घूम-कर देखते नहीं थे, वही अब दूसरों के पीछे सरपट दौड़ रहे हैं । स्वतन्त्र भारत की स्वतन्त्र नारी को अब सब कुछ फाड़ फेंकना है । जानकी उसके लिए बड़ी भोली और धर्म-भीरु है...उनमें बाँट की कमी है, साहस की कमी है, व्यक्तित्व की कमी है ।

शीला—जी वे भाषण न दे सकीं । (सुस्कराती है) दशरथ को ललकार न सकीं । रामचन्द्र से न कह सकीं कि तुम अपने पिता के धर्म के लिए वन जा रहे हो, मेरे रूप और यौवन की ओर नहीं देखते, आज की नारी यही कहेगी । पर आप ने मुझे इस युग की चकाचौंध में जाने भी नहीं दिया । मुझे तो जानकी के त्याग में ही उनका सबसे बड़ा अधिकार देख पड़ा है । यह अधिकार अब तक नहीं मिटा, कभी नहीं मिटेगा । अकेली एक जानकी में इस देश की नारी जानि लय हो चुकी है ।

राजनाथ—तब तुम निरंजन से बातें कर सकती हो । वह चाहता है कि...

(ऊपर देखने लगते हैं ।)

शीला—कोई बात नहीं । जानकी रावण से बातें कर सकती थीं, फिर भी रावण का संयम इन निरंजन में होगा या नहीं ? रावण इतना लोलुप नहीं था । वह अशोक वन में जानकी के निकट जब गया, अपने बचाव के लिए अपनी रानी को साथ लेता गया और उन्हें अकेले में बातें करनी हैं !

राजनाथ—देश के सभी पढ़े-लिखे लड़के इस समय निरंजन हैं, उनमें रावण का भी संयम नहीं है।

शीला—तो फिर इनके इस रोग की दवा यहाँ की लड़कियाँ करेंगी। हम सब को मीठा बनना पड़ेगा। तो कहाँ उनसे मुझे बाने करनी होंगी ?

राजनाथ—लेकिन क्रोध नहीं बेटी। तुम लाल हो गयीं।

शीला—आप के सामने। उनके सामने मैं न लाल हूँगी न पीली। संयम और विचार न छूटेगा मुझसे...!

राजनाथ—सोच लो जो तुम धीरे बनी रहो।

शीला—सोच लिया। आपको कोई भी अवसर मंगी चिन्ता, सन्देह का न मिलेगा। अपना सम्मान चाहती हूँ। मैं फिर उनके सम्मान को ठेस न दूँगी।

[मोहन का प्रवेश। उद्विग्न मुद्रा में कभी शीला को और कभी राजनाथ को देखता है।]

राजनाथ—क्या है ? ऐसे घबड़ाये क्यों हो ?

मोहन—जा रहा हूँ...उसे स्टेशन पहुँचा दूँ। मैंने उस यहाँ बुला कर उसका अपमान किया। शीला उससे धृणा करती है। क्या-क्या कह रहा है। कहे तो उसके पूर्वजों का इतिहास सुना दूँ।

शीला—धृणा भी एक तरह का सम्बन्ध है। मुझे इन देवता पर दया आ रही है, ये मुझे समझते क्या हैं ? बाबू जी ! यह बेचारा मन और आत्मा का रोगी है। भविष्य के लिए कुछ नहीं छोड़ता। सब कुछ वर्तमान में दबा रहा है ! सौ वर्ष जीने से अच्छा है इसके लिए एक दिन या बस एक क्षण जीना। कुम्भकर्ण छः महीने में एक दिन खाता था और यह जीवन भर के लिए एक ही दिन खा लेना चाहता है।

राजनाथ—(गम्भीर मुद्रा में) हँसी सूझती है तुम्हें.....

शीला—भूटभूट में रो पड़ी। आप भी रोये। मनुष्य को विपत्ति पर ही हँसी आती है और इससे बड़ी विपत्ति और कहाँ हम लांग देखेंगे ?

(हँसने लगती है ।)

राजनाथ—हूँ...हूँ...पागल हो रही है। ऐसे ही उससे बातें करेगी ?

मोहन—अब यह उसके सामने क्या जायेगी.....

(क्रोध और ग्लानि की मुद्रा)

शीला—तो फिर वे देवता यहाँ से ऐसे ही रोगी चले जायेंगे ? निर्बल चरित्र को हँसी नहीं आती—आपने एक बार कहा था बाबू जी !

राजनाथ—तीस करोड़ के इस देश में आज तीस भी हँसने वाले नहीं हैं। इसका कारण केवल आर्थिक नहीं। नैतिक भी है। आर्थिक होता तो कम-से-कम मिल-मशीन वाले; पूँजी और चोर-बाजार वाले तो हँसते ? उनकी तिजोरियाँ भरी हैं, पर मन खाली है। चरित्र-बल अब हमारी धरती में नहीं है। जो पीढ़ी आ रही है, उसका नमूना निरंजन है, मोहन है। देखो इन्हें, खड़े-खड़े काँप रहे हैं जैसे अभी रो पड़ेंगे या गिर पड़ेंगे। यह नयी शिक्षा क्या हुई चरित्र की बागडोर छोड़ दी गयी। मन के विकार और भावना की आँधी में सेमर की रुई-सी हमारी यह पीढ़ी उड़ी जा रही है।

मोहन—मैं जल रहा हूँ और आप मुझ पर व्यंग कर रहे हैं ?

राजनाथ—जो जलता है व्यंग उसी पर किया जाता है बेटा। तुम क्यों जल रहे हो ? जीवन को फूलों की सेज तुमने क्यों मान लिया ? फूल में भी काँटे होते हैं। विपरीत परिस्थिति में जो न डिगे वही पुरुष है। और तुम जानते हो, सब कुछ अनुकूल ही नहीं होता। निरंजन कभी तुम्हारा आदर्श था और अब तुम्हारी आँखों में वह इतना नीचे है। दोनों ही भूट हैं। दोनों को मिलाकर बराबर करो तब तुम्हें निरंजन मिलेगा।

शीला, बुलाऊँ उसे यहाँ। उसे आघात तो न पहुँचाओगी ?

शीला—मुझ पर कुछ भी सन्देह हो तो नहीं। मैं उन्हें धृणा नहीं करती। धृणा के लिए कुछ परिचय होना चाहिए। आप जानते हैं, मेरा उनसे कुछ परिचय नहीं है।

राजनाथ—(उठकर) तब मैं उसे बुला लाऊँ। तुम यहाँ न रहना मोहन, जब वह आ जाय।

मोहन—अब इसका फल कुछ नहीं है। यह हाना था पहले, अब वह जाने को तैयार है। कपड़े पहन चुका है।

राजनाथ—नदी की बाढ़ उतर जाती है ! मन का वेग न उतरता तब तो मनुष्य अपने ही ताप से जल मरता और फिर तुम्हें वह जान गया। इस घर में मुझे और शीला को भी जान ले, यही ठीक होगा।

(प्रस्थान)

मोहन—तुम उससे अकेले में बोल सकोगी ?

शीला—मैं उनसे डरती नहीं। वे बोल सकेंगे मुझसे ! मुझे सन्देह तो इसी का है। बाप के धन का बल, शिक्षा का बल, चरित्र और व्यक्ति का बल नहां बनेगा ? देख लेना उन्माद जो उनमें आ गया है, पल भर में उड़ जायेगा। बाबू जी से नहीं कहा, मुझसे तो कहे होते कि तुम्हारे मित्र यहाँ मेरे लिए आये हैं।

मोहन—मैं क्या जानता था कि तुम ऐसी ज़िद्दी हो।

शीला—इसका उत्तर मैं उन्हें दूँगी। मेरा मुँह अब तो देखोगे।

मोहन—मुझे लजाओ न शीला। तुममें मुझसे बुद्धि अधिक है।

शीला—बुद्धि स्त्री है और बल है पुरुष। बुद्धि और बल के मेल में व्यक्ति बनाता है। लुक-छिप कर बुद्धि चलती है, बल को यह कला नहीं आती।

मोहन—क्या ? कैसे देख रही हो ? शीला, तुम्हारी तबीयत ठीक नहीं है। तब वह यहाँ नहीं आयेगा।

शीला—रुको । मुझे उसके लिए तैयार होने दो ।

मोहन—किसके लिए ?

शीला—तुम्हारे मित्र से बात करने के लिए । एक-एक साँस का बल मुझे बटोरना होगा । उनके सामने मेरी आँखें नीची न पड़ें, यही चाहते हैं वे । अपना और मेरा अंतर वे देख लें ।

मोहन—तुम्हारे मुँह का रंग हर पल जो बदलता रहा है । तुम मुझसे कुछ लिखा रही हो शीला ।

शीला—मन की गति जो हर पल बदल रही है । मन के बीज मुँह पर आते हैं । तुम्हारी बहन को आज परीक्षा है । परीक्षक है एक पुरुष जो तुम्हारा मित्र बनता है । कैसा मित्र है वह ? क्या स्नेह है उसका तुम्हारे लिए ? जब तुम्हारी बहन के लिए वह इतना निर्दय है ?

मोहन—मैं उसे यहाँ नहीं आने दूँगा ।

(उठता है ।)

शीला—(उसका हाथ पकड़ कर) मैं उसे इस योग्य नहीं छोड़ूँगी कि फिर वह किसी स्त्री के साथ ऐसा व्यवहार करे । नहीं...तनिक नहीं, तुम न बड़बोलाओ ? मुझे स्वीकार कर वह तुम पर कृपा करता है । अब वह तुम्हारी कृपा चाहेगा कि तुम अपनी बहन उसे दो । भैया, तुम उसकी एक बात न सुनना, कह देना तुम अयोग्य हो । चाहिए तो यह था कि लुक-छिप कर मैं उसे देखती (हँसकर) और जब लुक-छिप कर मुझे देखना उसने चाहा तो फिर चाहे उसकी देह सोने के पत्तर में मढ़ी हो, उसके भीतर वह पुरुष कहाँ है, जिसकी ओर मैं...

(नाक और भौहें टेढ़ी पड़ती हैं ।)

मोहन—लुक-छिप कर वह तुम्हें देखना चाहता था । नीच.....

शीला—नीच नहीं निर्बल । जिसकी पुरुष-देह में स्त्री का मन है, जो प्रणय की भीख माँगता फिरता है । अपने घर का संकट जान कर

...जान कर कि मेरे सुख और सुविधा के लिए, मुझे रानी बनाने के लिए आप अपने सम्मान का त्याग कर रहे हैं, जिससे बड़ा त्याग पुरुष के लिए कोई दूसरा होता नहीं, यही चाहती थी मैं कि यह संयोग बैठ जाय, वह मुझे खींचना चाहता था अपनी चटक-मटक से, अपने उतावलेपन से, शिक्ता और धन के दम्भ से। किसी-न-किसी बहाने मैं बराबर उसके पास रहूँ, मुझे देखता रहे, मुझसे बातें करता रहे। मेरे भीतर उसके लिए कुछ छिपा न रहे, कुछ रहस्य न रहे। दो ही दिन में वह सब कुछ जान जाय, उसकी सारी भूख मिट जाय।

मोहन—कुछ न कहो, अब मैं सिर पीट लूँगा !

शीला—इतने सीधे हो भैया तुम। तुम्हारे मित्र के हाथ में लैंसेट बराबर रहता है। वे सब कहीं बहुत गहरे चीरकर देखते हैं वहाँ क्या है ? और तुम उनके ऊपर की चमक-दमक में यह नहीं देख सके कि भीतर कितना विष है उनके। सिर पीटने से नहीं बनेगा। हँस सको तो उनकी मूर्खता पर हँसो। पुरुष का गुण न धन है, न रूप, न विद्या, कदाँ तक वह अपने को रोक पाता है, कितना संयम उसमें है ?

मोहन—ऐं, कैसी आहट है ? आ रहे हैं तब वह...शीला, उसका अपमान न करना। तुम्हारे घर आया है, कम-से-कम इतना...

शीला—आधी बात कहते हो। कहो, फिर मैं कहूँगी ? अपमान वह स्वयं अपना करते हैं। मैं उनका अपमान क्या करूँगी। पुरुष जव स्त्री का शिकार करता है, सम्मानित नहीं रह जाता। फिर भी विश्वास कर, मैं अपने पर अंकुश रखूँगी।

मोहन—और वह जो कुछ पूछे उसका निडर उत्तर दोगी ?

शीला—(हँसकर) तुम्हारे मित्र मुझसे लड़ेंगे नहीं। डरने की बात क्या है ! रावण की लंका में जानकी उससे नहीं डरी और अब मैं अपने घर में उनसे डरूँगी ?

मोहन—तुम जानकी नहीं हो। यह युग अब जानकी का नहीं है।

शीला—जानकी का युग इस देश से कभी नहीं मिटेगा। मैं जानकी हूँ। इस देश की कोई भी स्त्री जानकी है। जब तक हमारे भीतर जानकी का त्याग है, जानकी की क्षमा है, तब तक हम वही हैं। तुम्हारे लिए जानकी पौराणिक हैं, इसलिए असत्य हैं। मेरे लिए वह भावगम्य हैं। उनके भीतर मेरी मारी समस्याएँ, मारे समाधान हैं। राम में तुम अविश्वास कर सकते हो, जानकी में अविश्वास का अधिकार तुम्हें नहीं है।

[निरंजन का प्रवेश। अवस्था प्रायः तेईस वर्ष। लम्बा-छरहरा गोरा शरीर। नुकीली नाक, आँखों पर चश्मा। इस नये युग की वेश-भूषा, प्रभाव की मुद्रा।]

निरंजन—गाड़ी का समय जा रहा है मोहन !

शीला—इस समय आप नहीं जायेंगे। आइए, बैठिए।

निरंजन—जी आपके बाबू जी भी यही कह रहे हैं। लेकिन अब चला ही जाना ठीक है।

शीला—बैठिए भी, चले जाने वाले को कब किसने रोका है ?

निरंजन—आप भी बैठें। (मेज़ के पास कुर्सी पर बैठता है। मोहन निकल जाता है) कहाँ जा रहे हो ?

मोहन—(नेपथ्य में) तुम्हारा सामान ठीक कर दूँ।

शीला—आप मुझसे अकेले में बातें करना चाहते थे। यह अवसर ठीक है।

निरंजन—इसलिए कि आप मेरी छाया से भागती रही हैं। बोलिए.....!

शीला—आप के घर में ... मायके में कोई भी लड़की आप जैसों से भागेगी। ऐसा न होना संकट की सूचना है, इतना भी नहीं जानते आप ?

निरंजन—उँह...आपके विचार बड़े पुराने हैं, नया भारत अब

आप लोगों से कुछ और चाहेगा ।

शीला—भारत वही पुराना है । आप उसे नया बना कर उसकी प्रतिष्ठा बिगाड़ रहे हैं । वह क्या चाहता है, उसको देखिए, उसको समझिए । जो आप चाहते हैं, उसका आरोप इस पुराने भारत पर न कीजिए ।

निरंजन—इस युग का...इस बीसवीं सदी का स्वतन्त्र भारत पुराना है ? पुराने विचारों में, पुरानी रूढ़ियों में जकड़े रहने का समय अब लट गया । आप देहांत में हैं । शहर में रहतीं, वहाँ की लड़कियों को देखतीं, सिनेमा और स्त्रियों के समाज में जातीं.....

शीला—कहीं भी रहती...कहीं भी जाती फिर भी मेरी आँखों में भारत नया नहीं लगता । इसकी चाल कभी रुकी नहीं, न यह कभी मरा न मिटा । एक सौम भी इसकी कव बन्द हुई, बतायेंगे ? इमने कितने देशों को जन्म लेते और मरते अपनी आँखों देखा है । इसकी आयु की, इसकी संजीवनी शक्ति की प्रतिष्ठा कीजिए ।

निरंजन—अरे...आप बड़ी भाधुक हैं । मैं तो गनगना उठा ।

शीला—इसकी पताका जब प्रशान्त से लेकर भूमध्य सागर तक उड़ी थी उस समय अपनी कन्याओं से जो इसने न चाहा, अब न चाहेगा ।

निरंजन—यह कविता की भाषा मैं नहीं समझ रहा हूँ ।

शीला—आप जिस साँचे में ढल चुके हैं, उसमें इस पुराने देश को न ढालिए । इसका अपना साँचा है, बने तो अभी भी समय है, उसमें फिर से अपने को ढालिए । जिस देश की रूढ़ियों मिट जाती हैं, वह देश भी मिट जाता है ।

निरंजन—आप तर्क करना जानती हैं । मैं तो समझा था कि...

शीला—आप समझे थे, मैं गूँगी हूँ । आपके सामने मैं बोल न पाऊँगी ।

निरंजन—जो कहे आप...फिर भी जिसके साथ जीवन भर रहना हो, उसे ठीक से जान लेना...मैं ही नहीं, कोई भी शिक्षित व्यक्ति चाहेगा।

शीला—जो आप-सा सजग रहेगा। थोड़ी देर किसी लड़की से बातें कर उसके भीतर का सब कुछ खोलकर देख लेना। इस काम में वह बराबर ठगा जाता है फिर भी उसे चेत नहीं होता।

निरंजन—भावी पत्नी को ठीक से देख लेना, समझ लेना, ठगा जाना है। कैसी बेदंगी बात आप कह रही हैं ?

शीला—आप की अवस्था का पुरुष जब मेरी आयु की लड़की के पास जाता है, अन्धा हो जाता है। और कहीं संयोग से लड़की सुन्दरी हुई तो वह उन्मत्त हो उठता है। अन्धा क्या देखेगा ? उन्मत्त क्या समझेगा ? इसलिए अपने-आप न देखकर किसी दूसरे से दिखा लेना आप ऐसों के हित की बात है। आप को साहस कैसे हुआ कि यहाँ तक चले आये मुझे देखने के लिए ?

निरंजन—आप के भाई ने मुझसे प्रार्थना की.....

शीला—उनकी प्रार्थना पर आप कुँ में कूदेंगे ? साँप उठा कर गले में लपेट लेंगे। भावी पत्नी ? पत्नी कब और कहाँ भावी हुआ करती है ? जब तक वह आपकी हो न जाय, आप उसके न हो जायें.....

(हँसती है।)

निरंजन—तो इसीलिए आप बुलाने पर भी मेरे पास नहीं आयी। मुझसे भागती फिरा। मैं समझता था देहात की लड़की होने से आप लजा रही हैं। आप पदों में रहा चाहेंगी।

शीला—जी...अकेले एक पुरुष में जिस स्त्री का प्राण समा जाता है, वह किसी-न-किसी प्रकार के पदों में रहना ही चाहती है। लुक-छिप कर आप मुझे देखने की चेष्टा करते रहे। बार-बार नाम लेकर आपने बुलाया...दो बार मैं गयी भी, फिर भी आप का सन्तोष

इतने से नहीं हुआ। मैंने देखा, आप संयम छोड़ रहे हैं, आपका स्वभाव बिगड़ रहा है।

निरंजन—मेरे स्वभाव की अलोचना करने का अधिकार आपको नहीं है। मैं यहाँ बुलाने पर आया था, आप जानती हैं। इस भभकती लू, धधकते आकाश में, मैं नैनीताल होता।

शीला—मेरे लिए आपको कष्ट हुआ, इसकी मैं कृतज्ञ हूँ। आप के स्वभाव की अलोचना मैं न करूँ, आप का मन करेगा, समाज की मान्यताएँ करेंगी, फिर अब मुझे भी क्यों नहीं है यह अधिकार महोदय? जितना कोई विवाह के बाद अपनी पत्नी से पाता होगा, उतना आप मुझसे पहले ही ले लेना चाहते थे। सब कुछ मैं आप को अभी दे देती तो फिर बाद के लिए क्या रखती? और न सही, मानसिक लगाव तो आप पैदा कर चुके हैं। अब आप जब किसी दूसरी लड़की को देखने जायेंगे, आप के मन में मैं भूल उठूँगी। आँखों में लहरा जाऊँगी। मुझे पार कर आप की आँखें उस बेचारी को देख न पावेंगी। पहले और भी कोई लड़की देख चुके हैं आप?

निरंजन—इससे आपका मतलब क्या है? देखा या न देखा हो? मैंने कष्ट दिया आप को, क्षमा करें, मैं अब चलूँ।

[कुर्सी से खड़ा होता है। शीला बढ़कर उसका हाथ पकड़ लेती है।]

शीला—अभी आप नहीं जायेंगे। अभी आप ने ठीक से न मुझे देखा, न समझा। और फिर रूठकर आप चले जायें। इस देश की सबसे बड़ी, पत्नी की कामना में आप यहाँ आये थे और लेकर जायेंगे क्या?

निरंजन—आप तो मुझे चक्कर में डाल रही हैं! आप को समझना बड़ा कठिन काम है। कहिए, फिर न जाऊँ तो क्या करूँ?

शीला—पुरुष की समझ में स्त्री कभी नहीं आती। मुझे आप

जितना ही अधिक समझना चाहेंगे, मैं आप से उतनी ही दूर होती जाऊँगी। सन्देह का भाग पुरुष ढोता है, स्त्री विश्वास चाहती है।

निरंजन—तब ?.....

शीला—यह अवसर न दीजिए कि स्त्री की जीभ चले, वह तर्क करे, प्रगल्भा और वाचाल बने। पुरुष समुद्र की थाह लगा लेगा। स्त्री में वह बराबर डूबता आया है।

निरंजन—मनुष्य की सीधी बोली में कहिए। संकेत की यह भाषा मैं नहीं जानता।

शीला—तब आपने इतना सचेत, इतना सजग, क्यों रहना चाहा ? कुमारी के सपने न तो पुरुष के धन के, न विद्या के, न रूप के होते हैं। वहाँ कुछ दूसरा ही रहता है।

निरंजन—(विस्मय में) तो फिर कह दें, मैं भी जान लूँ।

शीला—कह दूँ ? आपको विश्वास न होगा।

निरंजन—कहें भी ? विश्वास न करना मेरा अभिगम्य होगा।

शीला—सच कहते हैं ? अपने मन को टटोल लीजिए। सन्देह की छाया भी वहाँ न हो।

निरंजन—मुझे अधिक लज्जित न करें।

शीला—स्त्री पुरुष की असावधानी को, उसके अल्हड़पन को प्रेम करती है, जिसमें वह अपने प्राण से भी सजग नहीं रहता, संकट से झूझता चलता है। जिसमें वह ऐसी गहरी नींद सोता है कि स्त्री को अवसर मिले कि वह उसे प्राण में उठा ले, आँखों में बन्द कर ले। कल रात भर आप जागते रहे। अभी यह दशा है तो आगे क्या होगा ?

निरंजन—(विस्मय में) ऐं...कैसे जानती हैं आप कि मैं रात भर जागता रहा ?

शीला—हम कैसे जानती हैं ? इस चिन्ता में न पड़ें। आकाश के तारे कहते हैं हमसे, पेड़ की पत्तियाँ कहती हैं, हमारे कान अधिक

मुनते हैं। हमारी आँखें अधिक देखती हैं। आप ही कहें, रात भर आप जगे रहे या नहीं? आप जो कहेंगे, मैं वही मान लूँगी।

निरंजन—ठीक कह रही है...रात मुझे नींद नहीं आयी।

शीला—लेकिन क्यों? क्या इस आयु में आपको कंकड़ पर नींद न आ जानी चाहिए? क्या यह आपके मन का गोंग नहीं है? यह देश नया नहीं पुराना, बहुत पुराना, बूढ़ हो चुका है। यह चाहता है कि इसमें जो पैदा हो, इसी की तरह लम्बी आयु के हो। उनके बाल पक कर हिमालय की आभा पैदा करें। आपके नींद न आने का अर्थ है कि आप इस देश के प्रति ईमानदार नहीं हैं। नये के फेर में न पड़कर पुराने को समझें; आपके लिए, आपके समाज के लिए, इसी में कन्याएँ हैं।

निरंजन—तो आपके कहने का मतलब है कि मुझे आपको देखने या बातें करने का.....

शीला—जी...आज मैं आपके सामने हूँ...आप मुझे इस रूप में देख रहे हैं...कहीं मैं बीमार पड़ जाऊँ...कोई अंग सूना पड़ जाय...एक आँख फूट जाय तब तो आप मुझे छोड़ देंगे?

निरंजन—मैं इतना नीच हूँ! क्या कह रही हैं आप यह? मेरे भीतर भी हृदय है, उसमें प्रेम और कर्तव्य दोनों हैं।

शीला—फिर देखने या बातें करने में क्या धरा है? सन्देह से जहाँ आरम्भ है, वहाँ अन्त भी सन्देह है। किसका साहस होगा कि अन्धी या लँगड़ी कन्या का प्रस्ताव भी आपसे करेगा? अपने मित्र का विश्वास आप न कर सके, किसी दूसरे को भेज देते और मुझे देखने तब जब वह आपका अधिकार होता।

निरंजन—(मुस्कराकर) विवाह के बाद.....

शीला—तब क्या, और तब मैं आपके चारों ओर ऐसे भाँवर देती जैसे यह पृथ्वी सूर्य की भाँवगी देती है। उसके लिए आप को

प्रयत्न न करना पड़ता । आपके आकर्षण में बँधकर मैं ऐसी विवश रहती जैसी यह पृथ्वी सूर्य के आकर्षण में विवश है ।

निरंजन—शीला...उधर देखो...

शीला—अभी नहीं, पहले वह आकर्षण...और तब इसके लिए मैं विवश रहूँगी ।

निरंजन—तब मैं कहूँ, तुम्हारे बाबूजी से ।

शीला—कह दो...लेकिन उस नये युग का नया पुरुष यह सब कहने-कहाने में रूढ़िवादी बनेगा ।

निरंजन—तो तुम अभी आघात करती चलोगी ?

शीला—जब तक हम दोनों दो व्यक्ति हैं ।

निरंजन—दो व्यक्ति तो हम बराबर रहेंगे ।

शीला—यह नया मत है । पुराने में दो व्यक्तियों के भेद और साहम का मिट जाना ही प्रणय है । यहाँ न रुचि-भेद है, न बुद्धि भेद । शंकर का आधा शरीर इसीलिए पार्वती का है ।

निरंजन—यह सब तुम कहाँ जान गयीं ?

शीला—अपने संस्कार से । सब कुछ पढ़ा ही नहीं जाता, कुछ अनुभव भी किया जाता है ।

निरंजन—कैसे कहूँगा, मुझे तो लाज आ रही है । कल तक यह जितना मगल था अब नहीं है । मैं यहाँ अपने मित्र का उपकार करने आया था और अब यह मेरे साथ उपकार हो रहा है ।

शीला—बस, वही पुरानी बात । कन्या के प्रार्थी यहाँ बराबर पुरुष होने रहे हैं । तुम्हें भी वही करना पड़ा । इस नये युग, इस नयी सभ्यता में भी । तुम्हें भी दान लेना पड़ेगा किसी भी कन्या का ।

निरंजन—और वही दान मेरा सबसे बड़ा धन होगा । शीला ! मैं भूला था । अब मुझे नींद आयेगी, ऐसी गहरी कि तुम...

शीला—गला क्यों भर आया ? इतने अधीर अभी...

निरंजन—सम्भवतः हम लोगों का पूर्व जन्म का संयोग था...

शीला—निश्चित ! जीवन भर का सुख और सन्तोष इसी विश्वास पर टिकता है ।

निरंजन—(उसकी उँगलियाँ पकड़कर) इस एक दिन में मेरा सारा जीवन समा गया, इसके पहले जो कुछ था और बाद को जो कुछ होगा ।

शीला—सब इसी एक दिन में मिल जायगा, क्यों ?

निरंजन—इसी एक दिन में.....

(दोनों एक-दूसरे की ओर देखते हैं ।)

[पर्दा गिरता है ।]

विष्णु प्रभाकर

नये एकांकीकारों में विष्णु प्रभाकर त्वरित गति से आगे बढ़ रहे हैं । श्री विष्णु पुराने कथाकार हैं । एकांकी भी वे १९३६ से लिख रहे हैं परन्तु इधर उनकी कला में अभूतपूर्व निखार आ गया है । यथार्थ की अपेक्षा आप आदर्शोन्मुख हैं । मानव प्रवृत्तियों का विश्लेषण करके उनमें आध्यात्मिक पुट देना आपकी अपनी विशेषता है ।

‘संस्कार और भावना’ बड़ी सुन्दर, धरेलू भाँकी है । माँ और बेटे एक-दूसरे को निर्मम समझते हैं । वास्तव में दोनों में से कोई भी निर्मम नहीं । वे अपने-अपने विचारों तथा संस्कारों से बंधे हैं । अन्त में जब परिस्थितिवश माँ अपने संस्कारों को तज कर भावना का सहारा पकड़ती है तो मन को कुछ विचित्र संतोष मिलता है ।

रचनाएँ

कहानी संग्रह :—आदि और अन्त; रहमान का बेटा
एकांकी :—इंसान और अन्य एकांकी

संस्कार और भावना

पात्र

- माँ : संक्रांति काल की एक हिंदू नारी
अतुल : माँ का छोटा पुत्र ।
उमा : पुत्र-वधू: अतुल की पत्नी ।
नौकर और मिसरानी

[स्टेज पर एक मध्यवर्गीय परिवार के घर के आँगन का दृश्य । पूर्व की ओर दो कमरे हैं, जिनके द्वार बंद हैं । पश्चिम भाग का द्वार बाहर जाता है । वह भी बंद है, उत्तर भाग में रसोई के आगे बरामदा है । दक्षिण में बड़ा बरामदा है, जिसका एक द्वार बैठक में जाता है, दूसरा बाहर । जो कुछ दिखायी देता है वह स्वच्छ, सुन्दर और उच्च स्थिति का प्रतीक है । बैठक में एक सोफे का एक अंश दृष्टि में आता है । रसोई के पास स्वच्छता है और आलमारी में उचित सामान व्यवस्थित रूप से रखा हुआ है । आँगन में एक ओर पलंग पड़ा है; दूसरी ओर दो कुर्सियाँ तथा एक छोटा टेबुल । टेबुल पर नाश्ते के खाली बरतन हैं । पलंग पर उमा लेटी है । वह युवती

और रूपवती है। पर्दा उठते समय वह कोहनी पर भार टिकाये शून्य में ताकती दिखायी देती है। साड़ी अस्त-व्यस्त है। कुंडलाकार कर्णाफूल केशों में होकर कपोल पर आ गया है। आगे एक खुली पुस्तक है। वह पढ़ते-पढ़ते सोचने लगी है। सहसा धीरे से फुसफुसाती है :]

उमा—(अपने से बातें करती-सी) जिन बातों का हम प्राण देकर भी विरोध करने को तैयार रहते हैं, एक समय आता है, वही बातें हम चुपचाप स्वीकार कर लेते हैं।

[फुसफुसाकर वह फिर पुस्तक देखती है, फिर शून्य में दृष्टि गड़ा देती है। उसकी आंखें गम्भीर हैं, उसके मुख पर आने वाली संध्या की रक्तिम आभा सौन्दर्य बखेर रही है। वह इतनी खोयी हुई है कि नौकर रसोई के बरामदे से आकर बरतन उठा ले जाता है, पर वह नहीं देखती। उसका सिर उसी तरह खुला रहता है और बिदा की किरण कर्णाफूल पर चमकती है। उसी चमक में केशों की स्निग्धता उभर आती है। तभी पश्चिम वाला बाहर का द्वार खुलता है। माँ अंदर आती है। वे वृद्धा है। उनका मुख वेदना से पूर्ण है; आंखों में पीड़ा है और शरीर में थकान, उन्होंने साड़ी पर गरम चादर ओढ़ी है। उनकी पगध्वनि सुनकर उमा चौंककर उठती और आंचल ठीक करती है। मा उसी के पास आकर धम्म से बैठ जाती हैं। बैठती-बैठती कहती हैं :]

माँ—(भर्राया स्वर) तूने सुना उमा ?

उमा—(अचरज) क्या माता जी ?

माँ—पिछले महीने अविनाश ब्रह्म बीमार रहा था।

उमा—सच ?

माँ— हाँ।

उमा—उन्होंने तो कुल्ल नहीं बताया।

माँ—वह क्या बताता। वह क्या वहाँ जाता है।

उमा—फिर भी मुना तो होगा ! आपसे किसने कहा ?

माँ—मैं कुमार के घर गयी थी। वहीं उसकी मिसरानी ने मुझे बताया। कहने लगी—तुम्हारा बड़ा बेटा तो बहुत बीमार रहा, मर कर बचा। सुन कर मैं शर्म से गड़ गयी। मेरा बेटा बीमार रहे और मुझे पता भी न लगे। (आँसू भर आते हैं, स्वर लड़खड़ाता है) बचपन में उसे कभी-कभी खाँसी भी हो जाती थी तो मैं कई-कई दिन तक न खाती थी, न सोती थी, वे बहुतेरा ममझाते थे, नाराज़ भी हो जाते थे, पर जी नहीं मानता था; और अब.....

[आगे बोला नहीं जाता। फूट-फूट कर रो पड़ती हैं। उमा करुणा से द्रवित उनको सम्हालती है।]

उमा—(सांत्वना से भोला स्वर) माता जी, माता जी ! रोओ मत, इसमें आपका क्या अपराध है।

माँ—(उसी तरह) अपराध और किसका है। सब मुझी को दोष देते हैं। मिसरानी कह रही थी बहू कैसी भी हों, पर अपने प्राण देकर उसने पति को बचा लिया है। अकेली थी, पर किसी के आगे हाथ पसारने नहीं गयी। केवल एक-दो बार मिसरानी ने दवा ला दी थी। वरना स्वयं दवा लाती थी, घर का काम करती थी और फिर अविनाश को देखती थी.....

उमा—(टोक कर)—पर माता जी, भाई साहब को क्या हुआ था।

माँ—हैज़ा।

उमा—(चौंकती है)...हैज़ा...आ...!

माँ—मर कर बचा है, बेटी। दस दिन बीत गये, पर अभी तक दफ़्तर नहीं जाता।

उमा—कैसा अचरज है, उन्हें पता भी नहीं लगा।

माँ—पता लगा भी हो तो क्या वह बताने वाला है !

उमा—(चोट खाकर) पर माता जी, यह तो...

माँ—(विद्रूप से) मैं जानती हूँ। मेरे ही तो बेटे हैं। माया-ममता किसी को भी नहीं छू गयी है। हर बात में देश, धर्म और कर्त्तव्य की दुहाई देना उन्होंने सीखा है। अग्निर इनका बाप भी तो ऐसा ही निर्मम था। मुझे याद है जिस समय अतुल छोटा सा लड़का रहा था, बचने की कोई आशा नहीं थी; उस समय वे शान्त मन उसको धरती पर लिटाने के लिए सामान हटा रहे थे। दुनिया ने दाँतों-तले उँगली दबाकर कहा था—ऐसा भी क्या बाप जो अपने बेटे के लिए भी नहीं रोता। उसी बाप के ये बेटे हैं। मुझे सदा इन्होंने माया-ममता में फँसी हुई कहकर कोसा है। सदा मेरी निन्दा की है।

[चोट-पर-चोट खाकर उमा तिलमिलाती है। उसके भाव पलटते हैं, करुणा पहले खीझ, फिर हल्के रोष में बदल जाती है।]

उमा—लेकिन माता जी ! इसमें सब दोष भाभी का है।

माँ—वह तो है ही, पर बहू...

उमा—(बात काटकर) मैं अच्छी तरह जानती हूँ, वे देखने में बड़ी भोली लगती हैं परन्तु.....

माँ—(चौंककर) भोली.....

उमा—हाँ, बहुत भोली, माता जी ! बहुत प्यारी। जो एक बार देख लेता है वह फिर उस रूप को नहीं भुला सकता। बार-बार देखने को मन करता है। बड़ी-बड़ी काली आँखें; उनमें शैशव की भोली मुस्कराहट, अनजान में ही लज्जा से लाल हुए कपोलों पर रहने वाली हँसी.....

माँ—(और भी अचरज) पर उमा ! तूने क्या अविनाश की बहू को देखा है ?

उमा—(सम्हलकर) हाँ, माता जी।

माँ—कब ?

उमा—एक दिन जब आप उनसे गुस्सा होकर बहुत दुखी हो रही थीं, तब मैं भाभी के पास गयी थी। दोपहर का समय था, आप सो गयी थीं। 'सच, माताजी ! तब उनके रूप को देखकर मैं चौंक उठी थी। बंगाली इतने सुन्दर होते हैं। मुझे देखकर वे मुस्करायीं, फिर गले में आँचल डालकर प्रणाम किया और जब मैंने अपना परिचय दिया तो गदगद हो उठीं। मुझे छाती से लगा लिया.....

माँ— (वही विस्मय का स्वर) पर तूने तो मुझे कभी नहीं बताया !

उमा—बताना ही नहीं चाहती थी।

माँ—क्यों ?

उमा—क्योंकि मैं उनसे लड़ने गयी थी।

माँ—(भौंचक) लड़ने गयी थी !.....

उमा—जी हाँ ! मैं उनसे लड़ने गयी थी, क्योंकि वे आपके दुःख का कारण थीं। वे न होतीं तो बड़े भइया आपसे अलग कैसे होते, यही बात मैंने उनसे भी कह दी थी।

माँ—(उत्सुक) सच ?

उमा—जी हाँ !

माँ—तब ?

उमा—तब पहले तो वे मेरी बात सुनकर मुस्करा दीं, फिर बोलीं, 'इसमें मेरा क्या दोष है ? यह तो.....।' मुझे तब क्रोध आ रहा था। बात काटकर मैंने कहा—दोष तुम्हारा नहीं है तो किसका है ? तुम न चाहती तो बड़े भइया माँ को कैसे छोड़ देते। तुम अब भी चाहो तो सब कुछ ठीक हो सकता है। तुम उन्हें छोड़ सकती हो। तुम... तुम...

माँ—(चौंकती) उमा, उमा ! यह कहा तुमने...?

उमा—(भावावेश)—हाँ, मैंने स्पष्ट कहा था। माँ को बेटे से

अलग करना पाय है, माँ का हृदय तोड़ना अत्याचार है। उस अत्याचार को दूर करने के लिए प्राण भी देने पड़े तो कम है।

माँ—(उत्सुकता) तो उसने क्या कहा ?

उमा—वह बोली —‘वहन, में मानती हूँ माँ-बेटे के सम्बन्ध से बढ़कर और कोई सम्बन्ध नहीं है, परन्तु साथ ही पति से बढ़कर पत्नी के लिए भी और कुछ नहीं है, पति भी वह जिसके लिए उसने समाज की दी नहीं, वरन् अपने हृदय की साक्षी दी है; जिसे वह प्यार करती है। उसके कहने पर वह प्राण दे सकती है, परन्तु उसको दुखी करके वह किसी को सुखी करने की कल्पना नहीं कर सकती। करेगी तो वह पापिन है। सोचो, तुम स्वयं पत्नी हो। यद्यपि तुमने मेरी तरह पति का वरण नहीं किया है, फिर भी तुम उन्हें प्यार करती हो.....।’ मुझे यह बात बुरी लगी, मैंने कहा—‘मम पत्नियाँ अपने पतियों को प्यार करती हैं, मैं भी करती हूँ, प्राणों से अधिक प्यार करती हूँ। सुनकर वे घबरायीं नहीं, चौंकी भी नहीं, बोलों—‘मम की बात मैं नहीं कहती, इतना अधिकार मेरा नहीं है; पर यह मैं जानती हूँ, तुम अपने पति को प्यार करती हो, तभी तो यहाँ आयी हो। मैं अतुल को भी जानती हूँ, उनका भाई है वह भी। कई बार मेरे पाम आया है।’

माँ—(हठात् चौंककर) अतुल वहाँ गया है !

उमा—हाँ माता जी, उन्होंने यही कहा था। मुझे भी अचरज हुआ था। मैंने पूछा—‘वे यहाँ आते हैं ? तो हँस कर बोलों—‘डरो नहीं। वे भाई के पाम नहीं आते, दफ्तर के काम से आते हैं। तुम्हारी बातें उन्होंने ही मुझे बतायी हैं। मैं जानती हूँ, तुम उन्हें प्यार करती हो। सोचो तो, कोई तुमसे कहे तुम अतुल को छाँड़ दो, क्योंकि उनकी माँ या उनका परिवार इस विवाह से नाराज़ है तो क्या तुम.....’

मैं आगे न सुन सकी। मैंने चिल्ला कर कहा—‘भाभी, बस करो... पर उन्होंने बात पूरी करके दम लिया, बोलों—‘तो क्या तुम उन्हें छोड़

दोगी, बोली'

तब मैंने त्रस्त होकर कहा था—नहीं माभी ! मैं नहीं लोड़ सकूंगी ! चाहूँ तब भी नहीं । सुनकर वे मुस्करायाँ, कहने लगी—'अच्छा ! अब छोड़ो इन बातों को । अभी तो आयी हो और अभी ले चंटी ये पचड़े । आओ अन्दर चलें ।' पर माता जी ! मुझे न जाने क्या हो रहा था । मेरा अन्तर्मन काँपने लगा था; मैं उन्हें देखती थी तो जैसे मोहिनी-सी ल्ला जाती थी । मैं थी भी और नहीं भी थी ! मोह-ग्रस्त आदमी होता भी है और नहीं भी होता, पराहुआ यही, मैं वहाँ न टहर सकी । वह पुकारती ही रह गयीं ।

माँ—(स्वप्न से जागकर) तो तुम चली आयीं ?

उमा—हाँ ।

माँ—(गम्भीर वेदना का स्वर) उमा ! पर तुम वहाँ हो तो आयीं । अतुल भी जाता है, तुम सब जाते हो; तुम जो निर्मम हो और मैं ज मोह-ममता में फँसी हुई हूँ, उसकी स्रग्ता को तरसती हूँ । कैसी उन्टरी बात है ?

उमा—(क्षमा का स्वर) पर माता जी ! हम क्या उनसे मिलने गये थे ? हम तो.....

माँ—(बीच में टोककर) कहते हैं, चेतना से अचेतन अधिक शक्तिशाली है । उसमें अधिक आकर्षण है । इसीलिए तुम एक-दूसरे के प्रति खिंचे । चाहे वह प्रेम था, चाहे घृणा थी; पर असल बात रक्त के खिंचाव की थी, वह होकर रही । काश कि...(स्वर डूबता है) काश कि मैं निर्मम हो सकती, काश कि मैं संस्कारों की दासता से मुक्त हो सकती । हो पाती तो कुल, धर्म और जाति का भूत मुझे तंग न करता और मैं अपने घेरे से न बिलुडती । स्वयं उसने मुझसे कहा था—'संस्कारों की दासता सबसे भयंकर शत्रु है' ।

उमा—यह बड़े भइया ने कहा था ?

माँ—हाँ, उसी ने कहा था। मैंने उसे बहुत समझाया, अपने प्रेम की दुहाई दी, पर वह सदा यही कहता रहा—‘माँ ! संतान का पालन माँ-बाप का नैतिक कर्त्तव्य है। वे किसी पर कोई एहसान नहीं करते, केवल राष्ट्र का ऋण चुकाते हैं। वे ऋण-मुक्त हों, यही उनका पारितोष है। इससे अधिक मोह है, इसीलिए पाप है।’ पर मैं क्या करूँ। मैं जो इससे अधिक है, उसी को पाने को आतुर हूँ। मैं ही क्यों, सभी माता-पिता यही चाहते हैं। तभी मैं समझती हूँ उस डाकिन ने मेरे बेटे को मुझसे छीना है। पर वास्तव में दोष उसका नहीं है।

उमा—माता जी ! लगता तो मुझे भी ऐसा ही है।

[अतुल का प्रवेश। स्वस्थ युवक; साँवला रंग, मुख पर दृढ़ता और आँखों में सौम्यता। उसे देखकर उमा उठती है। क्षण भर उसे देखती है। वह सदा की तरह शान्त है। फिर रसोई की ओर चली जाती है, अतुल सीधे आकर कुर्सी पर बैठ जाता है और माँ को देखकर कहता है :]

अतुल—क्या बन रहा है, माता जी !

माँ—(अनसुना करके) तूने सुना रे ?

अतुल—क्या ?

माँ—अविनाश बहुत बीमार था।

(स्वर भोंग जाता है।)

अतुल—(जूता खोलते-खोलते) हाँ। उन्हें हैज़ा हो गया था।

माँ—(अचरज) तू जानता था !

अतुल—हाँ।

माँ—तूने मुझसे कहा तक नहीं।

अतुल—तुमसे कहता, क्यों ?

माँ—क्यों, क्या मैं उसकी माँ नहीं थी ?

अतुल—(मुस्कराता है) माँ तो हो, पर सुनकर क्या करती ? क्या

उसके पास जाता ?

(माँ सहसा जवाब नहीं देती । अतुल फिर कहता है :)

अतुल—मैं जानता था, तुम वहाँ नहीं जा सकोगी और जाने से भी क्या होता है । जब तक तुम उस नन्ही श्रेणी की विजातीय भाभी को घर नहीं ला सकती, तब तक प्रेम और ममता की दुहाई व्यर्थ है । तुम सब निर्मम हो, निर्मम.....

माँ—(बीच में रोककर) मैं निर्मम हूँ ?

अतुल—निर्मम ही नहीं, कायर भी । जिस संस्कारों में तुम पली हो, उन्हें तोड़ने की शक्ति तुम में नहीं है, माँ !

[उमा फिर प्रवेश करती है, उसके हाथ में चाय की ट्रे है जिसे वह कमरे में ले जा रही है, पर बात सुनकर रुकती है । कहती :]

उमा—लेकिन आप में तो है, आप तो वहाँ गये होंगे ।

अतुल—मुझे वहाँ जाने के लिए कोई काम नहीं था, इसलिए नहीं गया !

उमा }	—एक साथ	{	आप भी नहीं गये ! (प्याले झनझनाते हैं ।)
माँ }			हैं, तू भी नहीं गया !

अतुल—जाकर क्या करता ?

उमा—(विद्रूप से) भाई के मरने का समाचार सुनकर भी आप का हृदय नहीं पसीजता ?

अतुल—(शान्त स्वर)—उमा, यदि तुम भाई साहब को जानती होती तो ऐसी बात नहीं कहती । मुझे तो क्या, वे मेरे डाक्टर का भी अपने पास नहीं आने देते ।

उमा—लेकिन फिर भी आप उनके भाई थे, आपको देखकर उन्हें शान्ति मिलती । वे...

अतुल—(उठता है और नौकर को पुकारता है) रामसिंह, पानी ले आओ ।

(शीघ्रता से कोई चलता है । आवाज़ आती है :)

आवाज़—लाया सरकार ।

अतुल—(उमा की ओर मुड़कर) देखो उमा । भाभी से बढ़कर भइया का और कोई नहीं है, यह कटु सत्य हमें स्वीकार करना ही चाहिए । इसलिए उनके होने हमें कुछ भी करने का अधिकार नहीं था और न है ।

[उमा अस्त होकर चली जाती है । माँ भी उठती है । नौकर पानी ले आया है । अतुल हाथ-मुँह धोने लगता है । कई क्षण केवल पानी गिरने का शब्द होता रहता है, फिर बाहर का द्वार खुलता है । मिसरानी प्रवेश करती है । प्रौढ़ है और एक फटी हुई ऊनी चादर ओढ़े है । सिमटी-सी अतुल को देखती हुई अन्दर चली जाती है । अतुल उसे देखकर भी नहीं देखता । फिर अन्दर से बातें करने का स्वर उठता है । शीघ्र ही वह तीव्र हो जाता है । सूर्य की किरणें धीरे-धीरे विदा लेती हैं, संध्या विश्व के रंगमंच पर प्रवेश करती है, थके विश्व को सहलाने के लिए । तभी माँ कमरे से बाहर आती हैं । वे अब और भी उद्विग्न हैं । उनके पैर डगमगाते हैं । बाणी रुंध जाती है ।]

माँ—अतुल ! तूने और भी सुना !

अतुल—क्या माँ !

माँ—अब अविनाश अच्छा हुआ तो उसकी बहू बीमार पड़ गयी । कहते हैं, उसके बचने की कोई आशा नहीं है ।

अतुल—हाँ । सुना तो है ।

(उमा का प्रवेश)

उमा—क्या सुना है ?

अतुल—यही कि भाभी मरणासन्न हैं ।

उमा—(चकित) क्या ?

माँ—तो तुम्हें यह भी पता है ।

अतुल—हाँ माता जी । मुझे पता है और यह भी पता है कि अपने प्राण खपा कर भाभी ने भइया को तो बचा लिया था, परन्तु भइया के पास भाभी को बचाने के लिए प्राण नहीं हैं ।

माँ—(अनसुना करके) अतुल । तो अविनाश की बहू मर जायेगी !

अतुल—सुना तो ऐसा ही है ।

(उमा अचरज से माँ को देखती है, फिर पति को)

उमा—आप क्या कह रहे हैं ? आप वहा क्या नहीं गये ? नहीं, नहीं, आप वहाँ जाइए ।

अतुल—(उसी तरह शान्त) कोई लाभ नहीं होगा उमा ! भइया में एक दोष है—वे जो कहते हैं, करना जानते हैं । उनके पास पैसा नहीं है, परन्तु उसके लिए वे किसी के आगे हाथ नहीं पसारेंगे । वे फौलाद के समान हैं जो टूट जाता है पर भुकता नहीं ।

उमा—(काँपकर) लेकिन भाभी को कुछ हो गया—तो ?

अतुल—(गम्भीर) भाभी को कुछ हो गया तो...तो क्या होगा, (सहसा काँपकर) नहीं उमा । इससे आगे सोचने का अधिकार मुझे नहीं है ।

(सहसा माँ आगे बढ़ जाती है ।)

माँ—लेकिन मुझे तो है ।

अतुल—(उसी तरह) अधिकार तो तुम्हें भी नहीं है माँ । पर तुम सोचो तो तुम्हें कोई रोक भी नहीं सकता ।

माँ—(उद्विग्न) तो मैं सोचती हूँ, अविनाश की बहू को कुछ हो गया तो...तो शायद अविनाश भी.....

[आगे शब्द नहीं निकलते । बाणी फूट पड़ती है । उमा

अवाक् उन्हें देखती है ।]

उमा—(चकित-दुःखित) माता जी. माता जी !

माँ—हाँ बेटी । मैं उसे जानती हूँ, वह नहीं बचेगा, नहीं बचेगा ।

उमा—(कम्पित स्वर) माता जी । आप क्या कह रही हैं ?

अतुल—(गम्भीर) माँ ! तुम इतना जानती हो ?

माँ—हाँ उमा, अतुल ! मैं ठीक कह रही हूँ । वह नहीं बचेगा ।
उसे बचाने की शक्ति केवल मुझी में है, केवल मुझी में...

(फिर अचरज)

उमा }
अतुल } - (एक साथ) माँ.....

माँ—(उसी तरह) अतुल । इसीलिए कहती हूँ, तू एक बार मुझे उसके पास ले चल । वह निर्मम है, पर मैं माँ हूँ । मुझे निर्मम नहीं होना चाहिए । मैं उसके पास चलींगी ।

(उमा हर्ष से काँपती है । अतुल उसी तरह गम्भीर है ।)

उमा—माँ, तुम कितनी अच्छी हो !

अतुल—(गम्भीर)—अभी चलो माँ, पर चलने से पहले एक बात सोच लो । यदि तुम उस नीच कुल की विजातीय भाभी को इस घर में नहीं ला सकीं तो जाने से कुछ लाभ नहीं होगा ।

माँ—(अपेक्षाकृत शान्त) जानती हूँ अतुल ! इसीलिए तो जा रही हूँ ।

अतुल—(हर्षित स्वर)—ऐसी बात है तो चलो माँ, अभी चलो ।
(पुकारकर) रामसिंह ! तागा लाओ, अभी इसी वक्त । और उमा । तुम भी चलो, शीघ्र उमा.....

[कहता हुआ वह बड़े कमरे से होकर बाहर जाता है । उसकी आँख भर आयी है । माँ और उमा कई क्षण तक शून्य में ताकती

रहती हैं। वातावरण में शान्ति और स्निग्धता है। सहसा उमा को पुस्तक के वाक्य याद आ जाते हैं। वह फुसफुसाती है :]

उमा—जिन बातों का हम प्राण देकर भी विरोध करने को तैयार रहते हैं, एक समय आता है, जब चाहे किसी कारण से भी हो, हम उन्हीं बातों को चुपचाप स्वीकार कर लेते हैं।

[उसका मुख प्रकाश से मुखरित हो उठता है। नौकर ने पीछे से स्विच दबा दिया है। यहीं पर पर्दा गिर जाता है।]

जगदीशचन्द्र माथुर

जगदीशचन्द्र माथुर उन कलाकारों में से हैं जो एकांकी के प्रथम उत्थान के साथ साहित्य-क्षेत्र में आये और यद्यपि सिविल सर्विस ने उन्हें साहित्य से छीन लिया तो भी (धर्मप्रकाश आनन्द की भाँति) उन्होंने हिन्दी को अनेक सुन्दर कृतियाँ दीं ।

कुछ वर्ष पहले उनके पाँच एकांकियों का एक संग्रह 'भोर का सारा' नाम से प्रकाशित हुआ था, जिसमें उनके १९३४ से लेकर १९४३, तक के एकांकी संकलित हैं । कुछ नाटक तो रंगमंच पर सफलतापूर्वक खेले भी जा चुके हैं ।

'भोर का सारा' का प्रकाशन हिन्दी के एकांकी साहित्य में 'कारवा' ही की भाँति एक विशिष्ट स्थान रखता है । उसे एक नज़र देखने पर मालूम होता है कि नाटककार किस सबल प्रतिभा का स्वामी है और आधुनिक एकांकी तथा उसके रंगमंच की कला पर उसका कितना अधिकार है ।

प्रस्तुत नाटक 'भोर का सारा' ही से उद्धृत है । यह एक सशक्त और कठोर व्यंग्य है । इसमें समाज की उस घृणित मनोवृत्ति का चित्रण किया गया है जो कुंवारी युवती को गाय के समान निरीह तथा मेज़-कुर्सी की भाँति बेजान और बेहिस समझती है ।

यह परम हर्ष का विषय है कि श्री माथुर ने फिर नाटक लिखना आरम्भ कर दिया है । उनका एक एकांकी संग्रह 'ओ मेरे सपने' और भी प्रकाशित हो चुका है, तथा समय-समय पर उनके नाटक प्रसारित और प्रकाशित भी होते रहते हैं ।

रचनाएँ

कोणार्क :—नाटक

भोर का तारा :—एकांकी संग्रह

ओ मेरे सपने :—एकांकी संग्रह

रीढ़ की हड्डी

पात्र-पात्री

उमा : लड़की

रामस्वरूप : लड़की का पिता

प्रेमा : लड़की की माँ

शकर : लड़का

गोपाल प्रसाद : लड़के का चाचा

रतन : नौकर

[मामूली तरह से सजा हुआ एक कमरा । अन्दर के दरवाज़े से आते हुए जिन महाशय की पीठ नज़र आ रही है, वे अर्धेड उम्र के मालूम होते हैं, एक तख़्त को पकड़े हुए पीछे की ओर चलते-चलते कमरे में आते हैं । तख़्त का दूसरा सिरा उनके नौकर ने पकड़ रखा है ।]

बाबू—अबे, धीरे-धीरे चल ।.....अब तख़्त को उधर मोड़ दे...
उधर...बस, बस ।

नौकर—बिछा दूँ साहब ?

बाबू—(ज़रा तेज़ आवाज़ में) और क्या करेगा ? परमात्मा के

यहाँ अक्ल बँट रही थी तो तू देर से पहुँचा था क्या ?...बिछा दूँ साव !...और यह पसीना किसलिए बहाया है ?

नौकर—(तख्त बिछाता है) ही-ही-ही !

बाबू—हँसता क्यों है ?...अबे, हमने भी जवानी में कसरतें की हैं ! कलसों से नहाता था लोटों की तरह । यह तख्त क्या चीज़ है ?...उसे मीठा कर...यो...हाँ बस !.....और सुन, बहूजी से दूरी माँग ला, इसके ऊपर बिछाने के लिए । चद्दर भी, कल जो धोत्री के यहाँ में आयी है, वही ।

[नौकर जाता है । बाबू साहब इस बीच में मेज़पोश ठीक करते हैं । एक भाड़न से गुलदस्ते को साफ़ करते हैं । कुर्सियों पर भी दो-चार हाथ लगाते हैं । सहसा घर की मालकिन प्रेमा आती हैं । गंदुमी रंग, जोटा कद । चेहरे और आवाज़ से ज़ाहिर होता है किसी काम में बहुत व्यस्त हैं । उनके पीछे-पीछे भीगी बिल्ली की तरह नौकर आ रहा है—खाली हाथ । बाबू साहब—श्री रामस्वरूप—दोनों की तरफ़ देखने लगते हैं...]

प्रेमा—मैं कहती हूँ तुम्हें इस वक्त धोती की क्या ज़रूरत पड़ गयी ! एक तो वैसे ही जल्दी-जल्दी में.....

रामस्वरूप—धोती !

प्रेमा—हाँ, अभी तो बदलकर आये हो और फिर न जाने किस-लिए.....

राम०—लेकिन तुमसे धोती माँगी किसने ?

प्रेमा—यही तो कह रहा था रतन !

राम०—क्यों वे रतन, तेरे कानों में डाट लगी है क्या ? मैंने कहा था—धोत्री के यहाँ से जो चद्दर आयी है, उसे माँग ला.....अब तेरे लिए दूसरा दिमाग़ कहीं से लाऊँ । उल्लू कहीं का ।

प्रेमा—अच्छा जा पूजा वाली कोठरी में लकड़ी के बक्स के ऊपर

धुले हुए कपड़े रक्खे हैं न ! उन्हीं में से एक चद्दर उठा ला ।

रतन—और दरी ?

प्रेमा—दरी यहीं तो रक्खी है, कोने में । वह पड़ी तो है ।

राम०—(दरी उठाते हुए) और बीवी जी के कमरे में से हारमोनियम उठा ला, और सितार भी ।...जल्दी जा ।

(रतन जाता है । पति-पत्नी तख्त पर दरी बिछाते हैं ।)

प्रेमा—लेकिन वह तुम्हारी लाड़ली बेटो तो मुँह फुलाये पड़ी है ।

राम०—मुँह फुलाये !.....और तुम उसकी माँ किस मर्ज़ की दवा हो ? जैसे-तैसे करके तो वे लोग पकड़ में आये हैं । अब तुम्हारी बेवकूफी से सारी मेहनत बेकार जाय तो मुझे दोष मत देना ।

प्रेमा—तो मैं ही क्या करूँ ? सारे जतन करके तो हार गयी । तुम्हीं ने उसे पढ़ा-लिखाकर इतना सिर चढ़ा रक्खा है । मेरी समझ में तो ये पढ़ाई-लिखाई के जंजाल आते नहीं । अपना ज़माना अच्छा था ! 'आ ई' पढ़ ली, गिनती सीख ली और बहुत हुआ तो 'स्त्री-सुबोधनी' पढ़ ली । सच पूछो तो स्त्री-सुबोधनी में ऐसी-ऐसी बातें लिखी हैं—ऐसी बातें कि क्या तुम्हारी बी० ए०, एम० ए० की पढ़ाई होगी । और आजकल के तो लच्छन ही अनोखे हैं...

राम०—ग्रामोफोन बाजा होता है न ?

प्रेमा—क्यों ?

राम०—दो तरह का होता है । एक तो आदमी का बनाया हुआ । उसे एक बार चला कर जब चाहे तब रोक लो । और दूसरा परमात्मा का बनाया हुआ । रिकार्ड एक बार चढ़ा तो रुकने का नाम नहीं ।

प्रेमा—हटो भी । तुम्हें ठठोली ही सूझती रहती है । यह तो होता नहीं कि उस अपनी उमा को राह पर लाते, अब देर ही कितनी रही है उन लोगों के आने में ।

राम०—तो हुआ क्या ?

प्रेमा—तुम्हीं ने तो कहा था कि ज़रा ठीक-ठाक करके नीचे लाना । आजकल तो लड़की कितनी ही सुन्दर हो, बिना टीमटाम के भला कौन पूछता है ? इसी मारे मैंने तो पौडर-बौडर उसके सामने रक्खा था । पर उसे तो इन चीज़ों से न जाने किस जनम की नफ़रत है । मेरा कहना कि आँचल में मुँह लपेट कर लेट गयी । भई, मैं बाज़ आयी तुम्हारी इस लड़की से ।

राम०—न जाने कैसा इसका दिमाग़ है । वरना आजकल की लड़कियों के सहारे तो पौडर का कारबार चलता है ।

प्रेमा—अरे मैंने तो पहले ही कहा था । इंट्रेंस ही पास करा देते—लड़की अपने हाथ रहती, और इतनी परेशानी न उठानी पड़ती ! पर तुम तो.....

राम०—(बात काटकर) चुप, चुप ।... (दरवाज़े में भौंकते हुए) तुम्हें कतई अपनी ज़बान पर काबू नहीं है । कल ही यह बता दिया था कि उन लोगों के सामने ज़िक्र और ढंग से होगा । मगर तुम तो अभी से सब-कुछ उगले देती हो । उनके आने तक तो न जाने क्या हाल करोगी ।

प्रेमा—अच्छा बाबा, मैं न बोलूँगी । जैसी मर्जी हो, करना । बस मुझे तो मेरा काम बता दो ।

राम०—तो उमा को जैसे हो तैयार कर लो । न सही पौडर, वैसे कौन बुगी है । पान लेकर भेज देना उसे । और, नाश्ता तो तैयार है न ? (रतन का आना) आ गया रतन ?...इधर ला, इधर । बाज़ा नीचे रख दे । चद्दर खोल । पकड़ा तो ज़रा उधर से ।

(चद्दर बिछाते हैं ।)

प्रेमा—नाश्ता तो तैयार है । मिठाई तो वे लोग ज़्यादा खायेंगे नहीं । कुछ नमकीन चीज़ें बना दी हैं । फल रक्खे हैं ही । चाय तैयार है और टोस्ट भी । मगर हाँ, मक्खन ? मक्खन तो आया ही नहीं ।

राम०—क्या कहा ? मक्खन नहीं आया ! तुम्हें भी किस वक्त याद आयी है । जानती हो कि मक्खन वाले की दूकान दूर है, पर तुम्हें तो ठीक वक्त पर कोई बात सूझती ही नहीं । अब बताओ, रतन मक्खन लाये कि यहाँ का काम करे । दफ्तर के चपरासी से कहा था आने के लिए सो नखरों के मारे.....

प्रेमा—यहाँ का काम कौन ज़्यादा है ? कमरा तो सब ठीक-ठाक है ही । बाजा-सितार आ ही गया । नाश्ता यहाँ बराबर वाले कमरे में ट्रे में रक्खा हुआ है, सो तुम्हें पकड़ा दूँगी । एकाध चीज़ खुद ले आना । इतनी देर में रतन मक्खन ले ही आयगा ।...दो आदमी ही तो हैं ?

राम०—हाँ, एक तो बाबू गोपाल प्रसाद और दूसरा खुद लड़का है । देखो, उमा से कह देना कि ज़रा क़रीने से आये । ये लोग ज़रा ऐसे ही हैं । गुस्मा तो मुझे बहुत आता है इनके दकियानूसी खयालों पर । खुद पढ़े-लिखे हैं, वकील हैं, सभा-सोसाइटियों में जाते हैं, मगर लड़की चाहते हैं ऐसी कि ज़्यादा पढ़ी-लिखी न हो ।

प्रेमा—और लड़का ?

राम०—बताया तो था तुम्हें । बाप सेर है तो लड़का सवा सेर । बी० एस-सी० के बाद लखनऊ में ही तो पढ़ता है, मेडिकल कॉलेज में । कहता है कि शादी का सवाल दूसरा है, तालीम का दूसरा । क्या करूँ, मज़बूरी है । मतलब अपना है, वरना इन लड़कों और इनके बापों को ऐसी कोरी-कोरी सुनाता कि ये भी.....

रतन—(जो अब तक दरवाज़े के पास चुपचाप खड़ा हुआ था, जल्दी-जल्दी) बाबू जी, बाबू जी ।

राम०—क्या है ?

रतन—कोई आते हैं ।

राम०—(दरवाज़े से बाहर भाँककर जल्दी सुँह अन्दर करते हुए)

अरे, ए प्रेमा, वे आ भी गये । (नौकर पर नज़र पड़ते ही) अरे तू यहीं खड़ा है, बेवकूफ़ । गया नहीं मक्खन लाने ?...सब चौपट कर दिया ।...अब उधर से नहीं, अन्दर के दरवाज़े से जा (नौकर अन्दर जाता है).....और तुम जल्दी करो प्रेमा । उमा को समझा देना थोड़ा-सा गा देगी ।

[प्रेमा जल्दी से अन्दर की तरफ़ जाती है । उसकी धोती ज़मीन पर रखे हुए बाजे से अटक जाती है ।]

प्रेमा—उँह । यह बाजा वह नीचे ही रख गया है, कम्बख़्त ।

राम०—तुम जाओ, मैं रखे देता हूँ ।...जल्दी ।

[प्रेमा जाती है, बाबू रामस्वरूप बाजा उठाकर रखते हैं । किवाड़ों पर दस्तक ।]

राम०—हँ-हँ-हँ । आइए, आइए ।...हँ-हँ-हँ ।

[बाबू गोपाल प्रसाद और उनके लड़के शंकर का आना । आँखों से लोक-चतुराई टपकती है । आवाज़ से मालूम होता है कि काफी अनुभव और फितरती महाशय हैं । उनका लड़का कुछ ख़ीस निपोरने-वाले नौजवानों में से है । आवाज़ पतली है और खिसियाहट-भरी । झुकी कमर इनकी खासियत है ।]

राम०—(अपने दोनों हाथ मलते हुए) हँ-हँ, इधर तशरीफ़ लाइए इधर...।

(बाबू गोपाल प्रसाद बैठते हैं, मगर बेंत गिर पड़ता है ।)

राम०—यह बेंत !...लाइए मुझे दीजिए । (कोने में रख बेते हैं, सब बैठते हैं) हँ-हँ...मकान ढूँढ़ने में कुछ तकलीफ़ तो नहीं हुई ?

गोपाल०—(ख़ारकर) नहीं । तौंगेवाला जानता था...और फिर हमें तो यहाँ आना ही था । रास्ता मिलता कैसे नहीं ?

राम०—हँ-हँ-हँ । यह तो आपकी बड़ी मेहरबानी है । मैंने आपको तकलीफ़ तो दी.....

गोपाल—अरे नहीं साहब ! जैसा मेरा काम वैसा आपका काम । आखिर लड़के की शादी तो करनी ही है । बल्कि यों कहिए, कि मैंने आपके लिए खासी परेशानी कर दी !

राम०—हँ-हँ-हँ ? यह लीजिए, आप तो मुझे कॉर्टों में घसीटने लगे । हम तो आपके—हँ-हँ—सेवक ही हैं—हँ-हँ ! (थोड़ी देर बाद लड़के की ओर मुखातिब होकर) और कहिए, शंकर बाबू, कितने दिनों की छुट्टियाँ हैं ?

शंकर—जी, कॉलिज की तो छुट्टियाँ नहीं हैं । 'वीक एण्ड' में चला आया था ।

राम०—तो आपके कोर्स खत्म होने में तो अब साल भर रहा होगा ?

शंकर—जी, यही कोई साल दो साल ।

राम०—साल दो साल ?

शंकर—हँ-हँ-हँ !...जी, एकाध साल का 'मार्जिन' रखता हूँ.....

गोपाल—बात यह है साहब कि यह शंकर एक साल बीमार हो गया था । क्या बतायें, इन लोगों को इसी उम्र में सारी बीमारियाँ सताती हैं । एक हमारा ज़माना था कि स्कूल से आकर दर्जनों कचौड़ियाँ उड़ा जाते थे, मगर फिर जो खाना खाने बैठते तो वैसी-की-वैसी ही भूख !

राम०—कचौड़ियाँ भी तो उस ज़माने में पैसे की दो आती थीं ।

गोपाल—जनाब, यह हाल था कि चार पैसे में ढेर-सी मलाई आती थी । और अकेले दो आने की 'हज़म' करने की ताकत थी, अकेले ! और अब तो बहुतरे खेल वगैरह भी होते हैं स्कूल में । तब न कोई वौलीबॉल जानता था, न टेनिस, न बैडमिण्टन । बस कभी हॉकी या कभी क्रिकेट कुछ लोग खेला करते थे । मगर मजाल कि कोई कह जाय कि यह लड़का कमज़ोर है ।

(शंकर और रामस्वरूप खीसें निपोरते हैं ।)

राम०—जी हाँ, जी हाँ ! उस ज़माने की बात ही दूसरी थी, हँ-हँ !

गोपाल—(जोशीली आवाज़ में) और पढ़ाई का यह हाल था कि एक बार कुर्सी पर बैठे कि बारह घन्टे की 'सिटिंग' हो गयी, बारह घन्टे ! जनाब मैं सच कहता हूँ कि उस ज़माने का मैट्रिक भी वह अंग्रेजो लिखता था फ़र्राटे की कि आजकल के एम० ए० भी मुकाबिला नहीं कर सकते ।

राम०—जी हाँ, जी हाँ ! यह तो है ही ।

गोपाल—माफ़ कीजिएगा बाबू रामस्वरूप, उस ज़माने की जब याद आती है, अपने को ज़ब्त करना मुश्किल हो जाता है !

राम०—हँ-हँ-हँ !.....जी हाँ वह तो रंगीन ज़माना था, रंगीन ज़माना ! हँ-हँ-हँ !

(शंकर भी हीं-हीं करता है ।)

गोपाल—(एक साथ अपनी आवाज़ और तरीका बदलते हुए) अच्छा, तो साहब, फिर 'बिज़नेस' की बात-चीत हो जाय ।

राम०—(चौंककर) बिज़नेस ?—बिज़ि...(समझ कर) ओह... अच्छा, अच्छा । लेकिन ज़रा नाश्ता तो कर लीजिए ।

(उठते हैं ।)

गोपाल—यह सब आप क्या तकल्लुफ़ करते हैं !

राम०—हँ-हँ-हँ ! तकल्लुफ़ किस बात का । हँ-हँ ! यह तो मेरी बड़ी तकदीर है कि आप मेरे यहाँ तशरीफ़ लाये । वरना मैं किस काबिल हूँ । हँ-हँ !...माफ़ कीजिएगा ज़रा । अभी हाज़िर हुआ ।

(अन्दर जाते हैं ।)

गोपाल—(थोड़ी देर बाद दबी आवाज़ में) आदमी तो भला है । मकान-वकान से हैसियत भी बुरी नहीं मालूम होती । पता चले, लड़की कैसी है ।

शंकर—जी.....

(कुछ खखारकर इधर-उधर देखता है ।)

गोपाल—क्यों, क्या हुआ ?

शंकर—कुछ नहीं ।

गोपाल—झुककर क्यों बैठते हो ? ब्याह तय करने आये हो, कमर सीधी करके बैठो । तुम्हारे दोस्त ठीक कहते हैं कि शंकर की 'वैकब्रोन'.....

[इतने में बाबू रामस्वरूप आते हैं, हाथ में चाय की ट्रे लिये हुए । मेज़ पर रख देते हैं ।]

गोपाल—आखिर आप मानें नहीं !

राम०—(चाय प्याले में ढालते हुए) हँ-हँ-हँ ! आपको विलायती चाय पसन्द है या हिन्दुस्तानी ?

गोपाल—नहीं, नहीं, साहब, मुझे आधा दूध और आधी चाय दीजिए । और ज़रा चीनी ज़्यादा डालिएगा । मुझे तो भई यह नया प्रेशन पसन्द नहीं । एक तो वैसे ही चाय में पानी काफ़ी होता है, और फिर चीनी भी नाम के लिए डाली जाय तो जायका क्या रहेगा ?

राम०—हँ-हँ, कहते तो आप सही हैं ।

(प्याला पकड़ते हैं ।)

शंकर—(खखारकर) सुना है, सरकार अब ज़्यादा चीनी लेने वालों पर 'टैक्स' लगायेगी ।

गोपाल—(चाय पीते हुए) हूँ । सरकार जो चाहे सो करले, पर अगर आमदनी करनी है तो सरकार को बस एक ही टैक्स लगाना चाहिए ।

राम०—(शंकर को प्याला पकड़ते हुए) वह क्या ?

गोपाल—खूबसूरती पर टैक्स ! (रामस्वरूप और शंकर हँस पड़ते हैं) मज़ाक नहीं साहब, यह ऐसा टैक्स है जनाब कि देने वाले चूँ

भी न करेंगे। बस शर्त यह है कि हर एक औरत पर यह छोड़ दिया जाय कि वह अपनी खूबसूरती के 'स्टैंडर्ड' के माफ़िक अपने ऊपर टैक्स तय कर ले। फिर देखिए सरकार की कैसी आमदनी बढ़ती है।

राम०—(ज़ोर से हँसते हुए) वाह-वाह ! खूब सोचा आपने ! वाक़ई आजकल यह खूबसूरती का सवाल भी बेदब हो गया है। हम लोगों के ज़माने में तो यह कभी उतना भी न था। (तश्तरी गोपाल प्रसाद की तरफ़ बढ़ाते हैं) लीजिए।

गोपाल—(समोसा उठाते हुए) कभी नहीं साहब, कभी नहीं।

राम०—(शंकर की तरफ़ मुखातिब होकर) आपका क्या खयाल है शंकर बाबू ?

शंकर—किम मामले में ?

राम०—यही कि शादी तय करने में खूबसूरती का हिस्सा कितना होना चाहिए।

गोपाल—(बीच में ही) यह बात दूसरी है बाबू रामस्वरूप, मैंने आप से पहले भी कहा था, लड़की का खूबसूरत होना निहायत ज़रूरी है—कैसे भी हो, चाहे पाउडर वग़ैरह लगाये, चाहे वैसे ही। बात यह है कि हम-आप मान भी जायँ मगर घर की औरतें तो राज़ी नहीं होतीं। आपकी लड़की तो ठीक है ?

राम०—जी हाँ, वह तो अभी आप देख लीजिएगा।

गोपाल—देखना क्या। जब आपसे इतनी बातचीत हो चुकी है, तब तो यह रस्म ही समझिए।

राम०—हँ-हँ, यह तो आपका मेरे ऊपर भारी अहसान है। हँ-हँ !

गोपाल—और ज़ायचा (जन्मपत्र) तो मिल ही गया होगा।

राम०—जी ज़ायचे का मिलना क्या मुश्किल बात है। ठाकुर जी के चरणों में रख दिया। बस, खुद-बखुद मिला हुआ समझिए।

गोपाल—यह ठीक कहा आपने, बिल्कुल ठीक (थोड़ी देर रुककर) लेकिन हाँ, यह जो मेरे कानों में भनक पड़ी है, यह तो ग़लत है न ?

राम०—(चौंककर) क्या ?

गोपाल—यही पढ़ाई-लिखाई के बारे में !.....जी हाँ, साफ़ बात है साहब, हमें ज़्यादा पढ़ी-लिखी लड़की नहीं चाहिए । मेम साहब तो रखनी नहीं, कौन भुगतेंगे उनके नखरों को । बस हृद-से-हृद मैट्रिक पास होनी चाहिए.....क्यों शंकर ?

शंकर—जी हाँ, कोई नौकरी तो करानी नहीं ।

राम०—नौकरी का तो कोई सवाल ही नहीं उठता ।

गोपाल—और क्या साहब ! देखिए कुछ लोग मुझसे कहते हैं कि जब आपने अपने लड़कों को बी० ए०, एम० ए० तक पढ़ाया है, तब उनकी बहुएँ भी ग्रैजुएट लीजिए । भला पूछिए इन अक्ल के ठेकेदारों से कि क्या लड़को की पढ़ाई और लड़कियों की पढ़ाई एक बात है ! अरे मर्दों का काम तो है ही पढ़ना और क़ाबिल होना । अगर औरतें भी वही करने लगीं, अंग्रेज़ी अख़बार पढ़ने लगीं और 'पालि-टिक्स' वगैरह पर बहस करने लगीं तब तो हो चुकी गृहस्थी । जनाब, मोर के पंख होते हैं, मोरनी के नहीं, शेर के बाल होते हैं, शेरनी के नहीं ।

राम०—जी हाँ, और मर्द के दाढ़ी होती है, औरत के नहीं ।
हँ...हँ...हँ....!

(शंकर भी हँसता है, मगर गोपाल प्रसाद गम्भीर हो जाते हैं ।)

गोपाल—हाँ, हाँ । वह भी सही है । कहने का मतलब यह है कि कुछ बातें दुनिया में ऐसी हैं जो सिर्फ़ मर्दों के लिए हैं और ऊँची तालीम भी ऐसी ही चीज़ों में से एक है ।

राम०—(शंकर से) चाय और लीजिए ।

शंकर—धन्यवाद । पी चुका ।

राम०—(गोपाल प्रसाद से) आप ?

गोपाल—बस साहब, अब तो स्वतन्त्र ही कीजिए ।

राम०—आपने तो कुछ खाया ही नहीं । चाय के साथ 'टोस्ट' नहीं थे । क्या बतायें, वह मस्खन...

गोपाल—नाश्ता ही तो करना था साहब, कोई पेट तो भरना था नहीं । और फिर टोस्ट-वोस्ट मैं खाता भी नहीं ।

राम०—हँ-हँ । (मेज़ को एक तरफ़ सरका देते हैं । फिर अन्दर के दरवाज़े की तरफ़ मुँह कर ज़रा ज़ोर से) अरे, ज़रा पान भिजवा देना...! कहिए सिगरेट मँगवाऊँ ?

गोपाल—जी नहीं ।

[पान की तश्तरी हाथों में लिये उमा आती है । सादगी के कपड़े । गर्दन झुकी हुई । बाबू गोपाल प्रसाद आँखें गड़ाकर और शंकर आँखें छिपाकर उसे ताक रहे हैं ।]

राम०—हाँ...हाँ !...यही, हँ...हँ, आपकी लड़की है । लाओ बेटी पान मुझे दो ।

[उमा पान की तश्तरी अपने पिता को देती है । उस समय उसका चेहरा ऊपर को उठ जाता है और नाक पर रखा हुआ सोने की रिम वाला चश्मा दीखता है । बाप-बेटे चौंक उठते हैं ।]

गोपाल प्रसाद
और शंकर }—(एक साथ) चश्मा !

राम०—(ज़रा सकपकाकर) जी, वह तो...वह...पिछले महीने में इसकी आँखें दुखनी आ गयी थीं, सो कुछ दिनों के लिए चश्मा लगाना पड़ रहा है ।

गोपाल—पढ़ाई-वढ़ाई की वजह से तो नहीं है कुछ ?

राम०—नहीं साहब, वह तो मैंने अर्ज़ किया न ।

गोपाल--हूँ । (सन्तुष्ट होकर कुछ कोमल स्वर में) बैठो बेटी ।

राम०--वहाँ बैठ जाओ उमा, उस तरफ़ पर, अपने बाजे-बाजे के पास ।

(उमा बैठती है ।)

गोपाल--चाल में तो कुछ खराबी है नहीं । चेहरे पर भी छवि है ।...हाँ, कुछ गाना-बजाना सीखा है ?

राम०--जी हाँ, सितार भी और बाजा भी । मुनाओ तो उमा एकाध गीत सितार के साथ ।

[उमा सितार उठाती है । थोड़ी देर बाद मीरा का मशहूर गीत 'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई' गाना शुरू कर देती है । स्वर से ज़ाहिर है कि गाने का अच्छा ज्ञान है । उसके स्वर में तल्लीनता आ जाती है, यहाँ तक कि उसका मस्तक उठ जाता है । उसकी आँखें शंकर की भँपतो-सी आँखों से मिल जाती हैं और वह गाते-गाते एक साथ रुक जाती है ।]

राम०--क्यों, क्या हुआ ? गाने को पूरा करो उमा ।

गोपाल०--नहीं, नहीं, साहब; काफ़ी है । लड़की आपकी अच्छा गाती है ।

(उमा सितार रख कर अंदर जाने को उठती है ।)

गोपाल--अभी ठहरो, बेटी ।

राम०--थोड़ा और बैठी रहो, उमा !

(उमा बैठती है ।)

गोपाल--(उमा से) तो तुमने पेंटिंग-वेंटिंग भी...

उमा--(चुप)

राम०--हाँ, वह तो मैं आपको बताना भूल ही गया । यह जो तसवीर टंगी हुई है, कुत्ते वाली, इसी ने खींची है । और वह उस दीवार पर भी ।

गोपाल०—हूँ ! यह तो बहुत अच्छा है । और सिलाई बगैरह ?

राम०—सिलाई तो सारे घर की इसी के ज़िम्मे रहती है, यहाँ तक कि मेरी कमीज़ें भी । हूँ...हूँ...हूँ ।

गोपाल—ठीक ।...लेकिन, हाँ बेटी, तुमने कुछ इनाम-बिनाम भी जीते हैं ?

[उमा चुप है । रामस्वरूप इशारे के लिए खाँसते हैं । लेकिन उमा चुप है उसी तरह गर्दन झुकाये । गोपाल प्रसाद अधीर हो उठते हैं और रामस्वरूप सकपकाते हैं ।]

राम०—जवाब दो, उमा । (गोपाल से) हँ-हँ, ज़रा शरमाती है, इनाम तो इसने.....

गोपाल—(ज़रा रुखी आवाज़ में) ज़रा इसे भी तो मुँह खोलना चाहिए ।

राम०—उमा, देखो, आप क्या कह रहे हैं । जवाब दो न ।

उमा—(हल्की लेकिन मजबूत आवाज़ में) क्या जवाब दूँ बाबू जी ! जब कुर्सी-मेज़ बिकती है तब दूकानदार कुर्सी-मेज़ से कुछ नहीं पूछता, सिर्फ़ खरीदार को दिखला देता है । पसन्द आ गयी तो अच्छा है, वरना.....

राम०—(चौंककर खड़े हो जाते हैं) उमा, उमा !

उमा०—अब मुझे कह लेने दीजिए बाबू जी ।...ये जो महाशय मेरे खरीदार बनकर आये हैं, इनसे ज़रा पूछिए कि क्या लड़कियों के दिल नहीं होता ? क्या उनके चोट नहीं लगती ? क्या वे बेबस भेड़-बकरियाँ हैं, जिन्हें कसाई अच्छी तरह देख-भालकर खरीदते हैं ?

गोपाल—(ताव में आकर) बाबू रामस्वरूप, आपने मेरी इज़्ज़त उतारने के लिए मुझे यहाँ बुलाया था ?

उमा—(तेज़ आवाज़ में) जी हाँ, और हमारी बेइज़्ज़ती नहीं होती जो आप इतनी देर से नाप-तोल कर रहे हैं ? और ज़रा अपने इन

साहबजादे से पूछिए कि अभी पिछली फरवरी में ये लड़कियों के होस्टल के इर्द-गिर्द क्यों घूम रहे थे, और वहाँ से कैसे भगाये गये थे !

शंकर—बाबू जी, चलिए ।

गोपाल—लड़कियों के होस्टल में ?...क्या तुम कॉलेज में पढ़ी हो ?

(रामस्वरूप चुप !)

उमा—जी हाँ, मैं कॉलेज में पढ़ी हूँ । मैंने बी० ए० पास किया है । कोई पाप नहीं किया, कोई चोरी नहीं की, और न आपके पुत्र की तरह ताक-भाँककर काररता दिखायी है । मुझे अपनी इज्जत—अपने मान का खयाल तो है । लेकिन इनसे पूछिए कि ये किस तरह नौकरानी के पैरों पड़कर अपना मुँह छिपाकर भागे थे ।

राम०—उमा, उमा !

गोपाल—(खड़े होकर गुस्से में) बस हो चुका । बाबू रामस्वरूप, आपने मेरे साथ दगा किया । आपकी लड़की बी० ए० पास है और आपने मुझसे कहा था कि सिर्फ मैट्रिक तक पढ़ी है । लाइए मेरी छड़ी कहाँ है । मैं चलता हूँ । (छड़ी ढूँढ़कर उठाते हैं) बी० ए० पास ? उफोह ! गज़ब हो जाता ! भूठ का भी कुछ ठिकाना है ! आओ बेटे, चलो.....

(दरवाज़े की ओर बढ़ते हैं ।)

उमा—जी हाँ, जाइए, ज़रूर चले जाइए । लेकिन घर जाकर ज़रा यह पता लगाइएगा कि आपके लाड़ले बेटे के रीढ़ की हड्डी भी है या नहीं—यानी बैकबोन, बैकबोन...

[बाबू गोपाल प्रसाद के चेहरे पर बेबसी का गुस्सा है और उनके लड़के के रुलासापन । दोनों बाहर चले जाते हैं । बाबू राम-स्वरूप कुर्सी पर धम से बैठ जाते हैं । उमा सहसा चुप हो जाती है ।

लेकिन उसकी हंसी सिसकियों में तबदील हो जाती है । प्रेमा का घबराहट की हालत में आना ।]

प्रेमा—उमा, उमा...रो रही है ?

(यह सुनकर रामस्वरूप खड़े होते हैं । रतन आता है ।)

रतन—बाबू जी, मक्खन ।

(सब रतन की तरफ़ देखते हैं और पर्दा गिरता है ।)

उपेन्द्रनाथ अशक

श्री उपेन्द्रनाथ अशक मँजे हुए और सिद्ध हस्त कहानी लेखक और उपन्यासकार ही नहीं, उच्च कोटि के कवि और नाटककार भी हैं। उनकी नाटक-कला में कुछ विचित्र-सा अपनापन है। कुछ ऐसी चीज़ जो हमारे आस-पास के जीवन की लगती है। कदाचित् इसीलिए कि उनके नाटकों के कथानक प्रायः दैनिक जीवन से चुने हुए होते हैं और उनके पात्र सिनिक, न्युराटिक, प्रेम-वीर या असाधारण न होकर यथार्थ जीवन ही में हमारे इर्द-गिर्द घूमते दिखायी देते हैं।

यही कारण है कि अति साधारण-सी प्रतीत होने वाली घटनाएँ अथवा अत्यन्त ऊबड़-खाबड़ कथानक अशक जी के कुशल हाथों द्वारा बन-सँवर कर सुन्दर और प्रभावोत्पादक एकांकी के रूप में हमारे सामने आते हैं। अशक जी के एकांकी सुपाठ्य ही नहीं, पूर्ण रूप से अभिनेय भी होते हैं।

अशक जी का पहला एकांकी 'पापी', जो पहला होने पर भी सुन्दर है, १९३७ में 'विशाल भारत' में छपा। उसके बाद उनके प्रसिद्ध एकांकी 'अधिकार का रक्षक' और 'लक्ष्मी का स्वागत' क्रमशः 'सरस्वती' और 'हंस' में आये। तब से लेकर अब तक वे हिन्दी एकांकी साहित्य को अपनी मौलिक, सोद्देश्य और कलापूर्ण रचनाओं से अनवरत भर रहे हैं। उत्तर प्रदेश की सरकार उनके सांकेतिक एकांकी-संग्रह 'चरवाहे' पर आठ सौ का पुरस्कार भी प्रदान कर चुकी है।

‘सूखी डाली’ उसी संग्रह का अन्तिम नाटक है। इस संक्रान्ति काल में जहाँ पग-पग पर नये पुराने की टक्कर है, अशक जी ने घर-घर में होने वाले संघर्ष की एक भाँकी ‘सूखी डाली’ में दी है हल्का-हल्का व्यंग्य, और प्यारी-सी आर्द्रता सारे नाटक पर छायी हुई है। अशक जी की कहानियों की भाँति नाटक के प्राण भी उसके अन्तिम वाक्य में हैं।

दरबार कॉलेज, रीवाँ]

[प्रो० एम० पी० अग्रवाल

रचनाएँ

एकांकी-संग्रह : देवताओं की छाया में; तूफान से पहले; चरवाहे; पक्का गाना; पर्दा उठाओ पर्दा गिराओ।

नाटक : छठा बेटा; स्वर्ग की झलक; आदि मार्ग (चार नाटक); कैद और उड़ान (दो नाटक); जय-पराजय; अंजो दीदी; अलग-अलग रास्ते; अंधी गली, पैतरे।

उपन्यास : सितारों के खेल; गिरती दीवारें; गर्म राख; बड़ी-बड़ी आँखें; पत्थर-अलपत्थर।

कथा-संग्रह : पिंजरा; अंकुर; निशानियाँ; जुदाई की शाम का गीत; दो धारा; छोटें; काले साहब; कहानी लेखिका और जेहलम के सात पुल; सत्तर श्रेष्ठ कहानियाँ; पलंग।

कविता-संग्रह : प्रातः दीप; उर्मियाँ; दीप जलेगा; सड़कों पे ढले साये।

खंड-काव्य : बरगद की बेटा; चाँदनी रात और अजगर।

आलोचना : उर्दू काव्य की एक नई धारा।

संस्मरण : मण्टो मेरा दुश्मन।

निबंध : रेखाएँ और चित्र; ज्यादा अपनी कम परायी।

संकलन : संकेत; नये रंग- कांकी।

सूखी डाली

पुरुष पात्र

दादा
कर्मचन्द
परेश
भाषी
मल्लू

स्त्री पात्र

बेला (छोटी बहू)
छोटी भाभी (बेला की सास, इन्दु की माँ)
मँझली भाभी
बड़ी भाभी
मँझली बहू
बड़ी बहू
रजवा
पारो

पहला दृश्य

[मानव प्रगति के इस युग में जब व्यक्तिगत-स्वतंत्रता को अराजकता को हद तक महत्व दिया जाता है और तानाशाही को 'सभ्य' समाज में अत्यन्त निन्दनीय माना जाता है, दादा मूलराज अपने समस्त कुटुम्ब को

एक यूनिट (unit) बनाये, उस पर पूर्ण रूप से अपना प्रभुत्व जमाये, स महान् वट की भाँति अटल खड़े हैं, जिसकी लम्बी-लम्बी डालियाँ उनके आँगन में एक बड़े छाते की भाँति धरती को आच्छादित किये हुए, अगणित घोंसलों को अपने पत्तों में छिपाये, वर्षों से तूफानों और आंधियों का सामना किये जा रही हैं।

वर्षों इस वट की संगति में रहने के कारण दादा वट ही की भाँति महान् दिखायी देते हैं। आयु की ७२ सदियों देख लेने पर भी उनका शरीर अभी तक नहीं झुका और उनकी सफेद-दाढ़ी वट की लम्बी-लम्बी दाढ़ियों की भाँति उनकी नाभि को छूती हुई मानों धरती को छूने का प्रण किये हुए है।

दादा का बड़ा लड़का १९१४ के महा-युद्ध में सरकार की ओर से लड़ते-लड़ते काम आया था। इसके बदले में सरकार ने दादा को एक सुरब्बा ज़मीन दी थी। किंतु दादा सरकार की इस कृपा ही पर संतुष्ट नहीं रहे। अपने साहस, परिश्रम, निष्ठा, दूरदर्शिता और ख़ुश से उन्होंने एक के दस सुरब्बे बनाये। उनके दो बेटे और पोते, ज़मीन, फ़ार्म, डेयरी और चीनी के उस कारख़ाने के काम की देखभाल करते हैं, जो उन्होंने हाल ही में अपनी ज़मीन में लगाया है। सबसे छोटा पोता अभी-अभी नायब तहसीलदार होकर इसी कस्बे में लगा है। और कुछ ही दिन हुए, उसका विवाह लाहौर के एक प्रतिष्ठित तथा सम्पन्न कुल की सुशिक्षित लड़की से हुआ है।

उनके छोटे पोते परेश का नायब तहसीलदार और उनकी छोटी पतोहू का सुशिक्षित होना, अपने में दो महत्वपूर्ण बातें हैं। पहली तो सरकारी हलकों में उनकी प्रतिष्ठा और भी बढ़ जाने की सम्भावना है; गाँव में उनका और भी आदर होने लगा है, किन्तु साथ ही दूसरी से उनके परिवार के लिये संकट भी उपस्थित हो गया है। उनकी तीनों बहुएँ (जो घर में बड़ी भाभी, मंझली भाभी और छोटी भाभी के नाम से पुकारी

जाती हैं, सीधी-साधी महिलाएँ हैं। उन सब में उनकी पोती इन्दु ही (जिसने प्रायमरी स्कूल तक बड़ी सफलतापूर्वक शिक्षा पायी है) सबसे अधिक पढ़ी-लिखी समझी जाती है। घर में उसकी चलती भी खूब है और दादा अपनी इस पोती से प्यार भी बहुत करते हैं; किन्तु इस ग्रैजुएट छोटी पतोह के आने से (जो घर में छोटी बहू के नाम से पुकारी जाती है) कुटुम्ब के इस तालाब में इस प्रकार लहरें-मी उठने लगी हैं जैसे स्थिर पानी में बड़ी-सी ईंट गिरने से पैदा हो जाती हैं।

पर्दा इमारत के बरामदे में खुलता है। वास्तव में यह बरामदा घर की स्त्रियों की रादेवू (Rendezvous) सम्मिलन-स्थल है। दिन भर इसमें कोलाहल मचा रहता है। कभी घर की स्त्रियाँ यहाँ धूप लेती हैं; कभी चरखे कातती हैं; कभी गप्पें उड़ाती हैं; कभी लड़ती-भगड़ती हैं और कुछ न हो तो स्नानागार में पड़े कपड़े ही धोया करती हैं। यह स्नानागार बाहर के अट्ठाले में है। दायाँ दीवार के कोने में जो दरवाजा है, उसके साथ ही बाहर को। रमोई आदि से निबट कर दोपहर के बाद, घर की दो चार स्त्रियाँ प्रायः रोज वहाँ कपड़े धोया करती हैं और निरंतर 'धप-धप' की ध्वनि इत बरामदे में गुँजा करती है।

सामने दीवार के बायें कोने में एक छोटी-सी गैलरी है जिसमें (दोनों ओर आमने-सामने) पहले मँभली बहू और बड़ी बहू के कमरे हैं (जिनकी खिड़कियाँ बरामदे में खुलती हैं) फिर मँभली भाभी और बड़ी भाभी के। छोटी भाभी का कमरा (जो इन्दु की माँ और छोटी बहू बेला की सास है) दायाँ ओर है। छोटी बहू का कमरा ऊपर की छत पर है और बायीं दीवार में सीढ़ियाँ बनी हैं, जो ऊपर को जाती हैं।

सामने की दीवार के साथ गैलरी के इधर को दो तख्त बिछे हैं। दो-एक चारपाइयाँ दीवार के साथ खड़ी हैं। एक पुराने फैशन की बड़ी आराम-कुर्सी भी सामने की दीवार के साथ लगी हुई है।

दोपहर होने में अभी काफी देर है। अतः बरामदे में अपेक्षाकृत

निस्तब्धता है; केवल गैलरी से स्त्रियों के जल्दी-जल्दी बातें करने की आवाज़ आ रही है। पर्दा उठने के कुछ क्षण पश्चात् इन्दु तेज़-तेज़ गैलरी से निकलती है और बिफरी हुई-सी दायीं तरफ़ के तख़्त पर बैठ जाती है। उसके पीछे-पीछे बड़ी बहू शान्त स्वभाव से चलती हुई आती है। इन्दु की भृकुटी चढ़ी है और बड़ी बहू शान्त और गम्भीर है।]

बड़ी बहू—(इन्दु के कन्धों पर अपने दोनों हाथ रखते हुए) आखिर कुछ कहो भी। क्या कह दिया छोटी बहू ने ?

इन्दु—(चुप)

बड़ी बहू—क्या कह दिया उसने जो इतनी बिफरी हुई हो ?

इन्दु—(क्रोध से) और क्या ईंट मारती।

बड़ी बहू—कुछ कहो भी.....

इन्दु—मेरे मायके में यह होता है, मेरे मायके में यह नहीं होता (हाथ मटकाकर) अपने और अपने मायके के सामने तो वह किसी को कुछ गिनती ही नहीं। हम तो उसके लिए मूर्ख, गँवार और अमभ्य हैं।

बड़ी बहू—(आश्चर्य से) क्या...

इन्दु—बैठक के बाहर मिश्रानी खड़ी रो रही थी। मैंने पूछा तो पता चला कि बहू रानी ने उसे काम से हटा दिया है।

बड़ी बहू—(उसी आश्चर्य से) काम से हटा दिया है ! भला क्या दोष था उसका ?

इन्दु—दोष यह था कि उसे काम करना नहीं आता।

बड़ी बहू—(स्तम्भित) काम करना नहीं आता ?

इन्दु—उस बेचारी ने कहा भी कि मैं दस-पाँच दिन में सब कुछ सीख जाऊँगी। भला कै दिन हुए है मुझे आपका काम करते ? किन्तु बहू रानी न मानीं। भाड़न उन्होंने उसके हाथ से छीन लिया और कहा कि हट तू, मैं सब कुछ स्वयं कर लूँगी। अभी तक इतना तो

सलीका नहीं कि बैठक कैसे साफ़ की जाती है, पाँच-दस दिन में तू क्या सीग्व जायगी ?

बड़ी बहू—सलीका नहीं...?

इन्दु—मैंने जाकर समझाया कि भाभी दस साल से यही मिश्रानी घर का काम कर रही है। घर भर की सफ़ाई करती है, बर्तन मलती है, कपड़े धोती है। जाने तुम्हारा कौन-सा ऐसा काम है जो इससे नहीं होता। और फिर मैंने समझाया कि भाभी नौकर से काम लेने की भी तमीज़ होनी चाहिए।

बड़ी बहू—हाँ और क्या.....

इन्दु—भट से बोली, 'वह तमीज़ तो बस आप लोगों को है,' मैंने कहा, 'तुम तो लड़ती हो। मैं तो सिर्फ़ यह कहना चाहती थी कि नौकर से काम लेने का ढंग भी होता है।' इस पर तुनक कर बोलीं, 'और वह ढंग मुझे नहीं आता, मैंने नौकर जो यहीं आकर देखे हैं।' फिर कहने लगी, 'काम लेने का ढंग उसे आता है, जिसे काम की परख हो। सुबह-शाम का भाडू देने मात्र से कमरा साफ़ नहीं हो जाता। उसकी बनावट-सजावट भी कोई चीज़ है। न जाने तुम लोग किस तरह इन फूहड़ नौकरों से गुज़ारा कर लेती हो। मेरे मायके में तो ऐसी गँवार मिश्रानी दो दिन छोड़, दो घड़ी भी न टिकती।'

बड़ी बहू—कहीं उसने ये सब बातें ?

इन्दु—और कैसे कही जाती हैं—जब से आयी है यही तो सुन रहे हैं—नौकर अच्छे हैं तो उसके मायके में, खाना-पीना अच्छा है तो उसके मायके में, कपड़े पहनने का ढंग आता है तो उसके मायके वालों को, हम तो न जाने कैसे जी रहे हैं ! (नाक-भों चढ़ाकर) यहाँ के लोगों को खाना-पीना, पहनना-ओढ़ना कुछ भी नहीं आता। हमारे नौकर गँवार, हमारे पड़ोसी गँवार, हम स्वयं गँवार.....

बड़ी बहू—(चकित-विस्मित सिर्फ़ सुनती है ।)

इन्दु—मैंने भी कह दिया, 'क्या बात है भाभी तुम्हारे मायके की ? एक नमूना तुम्हीं जाँ हो । एक मिश्रानी भी ले आतीं तो हम गँवार भी उससे कुछ सीख लेते ।'

[दायाँ दोवार के कमरे से छोटी भाभी (इन्दु की माँ और छोटी बहू बेजा की सास) प्रवेश करती हैं । उनके पीछे-गोछे रजवा है ।]

छोटी भाभी—क्यों इन्दु बेटी, क्या बात हुई—यह रजवा रो रही है, कोई कड़ी बात कह दी छोटी बहू ने इसे ?

इन्दु—मीठी वं कब कहती हैं जो आज कड़वी कहेंगी ?

छोटी भाभी—यह आज तुम कैसी जली-कटी बातें कर रही हो ? छोटी बहू से झगड़ा हो गया है क्या ?

रजवा—(भरे हुए गले से) माँ जी, आज उन्होंने बरबस मुझे काम से हटा दिया... इतने बरस हो गये आपकी सेवा करते, कभी किसी ने इस प्रकार अनादर न किया था । मुझे तो माँ जी आप अपने पास ही रखिए । मैं आज से उनका काम न करने जाऊँगी ।

छोटी भाभी—वह तो बच्ची है मिश्रानी, तू भी उसके साथ बच्ची हो गयी ।

इन्दु—(मुँह बिचकाकर) जी हाँ, बच्ची है ! रोटी को चोची कहती है । उसे तो बात ही करनी नहीं आती (क्रोध से) अपने मायके के सामने तो वह किसी को कुछ समझती ही नहीं और गज़ भर की जवान.....

बड़ी बहू—बात यह है छोटी माँ कि छोटी बहू को हमारा खाना-पीना, पहना-ओढ़ना कुछ भी पसन्द नहीं । उसे हमसे, पड़ोस से, हर बात से घृणा है ।

छोटी भाभी—(चिन्ता से) फिर कैसे चलेगा ? हमारे घर में तो मिलकर रहना, बड़ों का आदर करना, अपने घर की रूखी-सूखी को दूसरों की चुपड़ी से अच्छा समझना, नौकरों पर दया और छोटों पर...

(मँभली बहू बाहर से हँसती हुई प्रवेश करती है ।)

मँभली बहू—खिहि...खिहि...खिहि...हा-हा-हा.....

इन्दु—क्या बात है भाभी, जो हँसी के मारे लोट-पोट हुई जा रही हो ।

मँभली बहू—खिहि...खिहि...(हाथ-पर-हाथ मारती है)...हा-हा—हा-हा-हा.....

(गैलरी में मँभली भाभी और बड़ी भाभी प्रवेश करती हैं ।)

दोनों—क्या बात है जो आज इतनी 'हा-हा, ही-ही' हो रही है ?

इन्दु—यह भाभी हैं कि ब्रम हँस जा रही हैं, कुछ बताती ही नहीं ।

मँभली बहू—मैं कहती हूँ...

(फिर हँस पड़ती है ।)

बड़ी बहू—आखिर कुछ कहो भी ।

मँभली बहू—आज भाई परेश की वह गत बनी कि बेचारा अपना-सा मुँह लेकर रह गया...खिहि...खिहि...हा-हा-हा-हा—हा-हा-हा...

छोटी भाभी—ओ हो, तुम्हारी हँसी भी बहू.....

मँभली बहू—मैं क्या करूँ, मैं हँसी के मारे मर जाऊँगी छोटी माँ ! अभी-अभी छोटी बहू ने परेश की वह गत बनायी कि बेचारा अपना-सा मुँह लेकर दादा जी के पास भाग गया ।

बड़ी बहू }—बात क्या हुई ?
इन्दु }

मँभली बहू—मैं तो ऊपर सामान रखने गयी थी । बहुत-सी बातें तो मैंने सुनी ही नहीं, बहुत-सी समझ भी नहीं पायी । अंग्रेजी में गिटपिट कर रहे थे । छोटी बहू का पारा कुछ चढ़ा हुआ था । इतना मालूम हुआ कि परेश स्नान कर कमरे में गया तो बहू रानी ने सारा

फर्नीचर निकालकर बाहर रख दिया था। परेश ने कारण पूछा। छोटी बहू ने कहा, 'मैं इन टूटी-फूटी कुर्सियों और गले-सड़े फर्नीचर को अपने कमरे में न रहने दूँगी।' परेश कहने लगा, 'हमारे बुजुर्ग...' बात काट कर छोटी बहू ने कहा, 'हमारे बुजुर्ग तो नंगे-बुच्चे जंगलों में घूमा करते थे तो क्या हम भी उनका अनुकरण करें' (हँसती है) और जो सामान पड़ा था वह भी उठा कर बाहर फेंक दिया।

इन्दु—फिर...फिर...

मँभली भाभी—छोटी बहू.....

छोटी भाभी—यह तो.....

मँभली बहू—परेश ने कहा, 'इस फर्नीचर पर हमारे दादा बैठते थे, पिता बैठते थे, चाचा बैठते थे। उन लोगों को कभी शर्म नहीं आयी, उन्होंने कभी फर्नीचर के गले-सड़े होने की शिकायत नहीं की। अब यदि मैं जाकर इसे रखने पर आपत्ति करूँगा तो दादा कहेंगे कि तहसीलदार होते ही लड़के का सिर फिर गया है। (हाथ मटकाकर) न भाई ?

मँभली और
बड़ी भाभी {—हाँ ठीक ही तो कहा परेश ने।

छोटी भाभी—परेश...मेरा बेटा भला.....

मँभली भाभी—तब बहू ने कहा, 'तो न कहो—मैं तो इस गले-सड़े सामान को कमरे के पास तक न फटकने दूँगी। इस बेडौल फर्नीचर से तो नीचे धरती पर चटाई बिछा कर बैठना-लेटना अच्छा है। मेरे मायके में.....'

इन्दु—(क्रोध से) बस, उसे तो अपने मायके की पड़ी रहती है चौबीसों घड़ी।

मँभली बहू—और छोटी बहू ने अपने मायके के बड़े-बड़े कमरों और उनके बहुमूल्य फर्नीचर का बखान किया (हँसती है) और महाशय परेश की एक भी न चलने दी। बेचारे भीगी बिल्ली बने दादा

जी के पास चले गये—खि-हि-हि...खि-हि-हि...

(हँसती है। दूसरी भी उसके साथ हँसती हैं।)

—मैं तो चुपके से चली आयी (मुँह बिचकाकर) ज़वान है छोटी बहू की या कतरनी...और फिर जब अंग्रेज़ी बोलने लगती है तो कुछ समझ में ही नहीं आता। परेश बेचारा तो अपना-सा मुँह लेकर रह जाता है। जाने तहसीलदार कैसे बन गया।

इन्दु—बस ज़वान-ही-ज़वान है। बात तो जब है, जब काम भी हो। एक काम को कहो तो सौ नाक-भौंह चढ़ाती है। दादा जी ने चार कपड़े धोने को कहा था, वे तो पड़े गुसलखाने में गल रहे हैं।

छोटी भाभी—गुसलखाने में गल रहे हैं ! तू उठा क्यों न लायी उन्हें, जा भागकर उठा ला और फटककर आँगन में डाल दे। मैं बहू को समझा दूँगा—इस तरह कैसे चलेगा...(और भी चिन्ता से)... परेश ने समझाया नहीं उसे ?

इन्दु—परेश की तो जैसे वहाँ बड़ी सुनवाई होती है।

मँझली बहू—वह मलमल के थान और अबरों* की बात याद है न—अभी तक पड़े हुए हैं। कह-कहकर हार गये परेश महाशय। बहूरानी ने हाथ तक न लगाया उन्हें और वे शर्म के मारे ले जाते नहीं दादा जी के पास। कचहरी में होंगे तहसीलदार, घर में तो अपराधियों से भी गये-बीते हो जाते हैं।

(हँसती है, इन्दु और बड़ी बहू भी हँसती हैं।)

छोटी भाभी—पर दादा जी के कपड़े.....

बड़ी भाभी—तुम भी बहन बस...क्या इतना पढ़-लिखकर छोटी बहू कपड़े धोयेगी !

इन्दु—क्यों ! उसके हाथ नमक-मिट्टी के हैं जो गल जायँगे ?

(बाहर से दादा के हुक्का गुड़गुड़ाने की आवाज़ आती है।)

*अबरा—लहाफ़ के ऊपर का कपड़ा।

कता, जब तक अपनी शाखाओं में वह ऐसे पत्ते नहीं लाता, जिनकी गीतल-सुखद छाया मन के सारे ताप को हर ले और जिसके फूलों की गीनी-भीनी सुगन्ध हमारे प्राणों में पुलक भर दे ।

भापी—(बाहर से) दादा जी, मल्लू और जगदीश ने मेरा वट ना पेड़ उखाड़ दिया (मल्लू से लड़ते हुए चीख-चीखकर) क्यों उखाड़ा तुने मेरा पेड़— क्यों उखाड़ा... ?

दादा—पेड़ ?...(हँसते हैं)...बच्चे !! (हँसते हैं) ठहरो भापी, तड़ो मत बेटा । जाना कर्मचन्द ज़रा हटाना दोनों को.....

[कर्मचन्द जाता है । दादा फिर हुक्के की नली मुँह से लगा लेते हैं—परेश नीची नज़र किये प्रवेश करता है ।]

दादा—आओ बेटा परेश, वह मैंने एक-दो कपड़े भेजे थे न, तनिक रखना बहू ने उन्हें धो डाला है या नहीं । धो डाले हों तो ले आओ तारा । फिर मैं तुम से बात करूँगा ।

परेश—मैं लज्जित.....

दादा—नहीं धुले तो फिर धुल जायँगे बेटा ! आओ इधर बैठो मेरे पास । मैं तो तुम्हें बुलाने ही वाला था । आओ, आओ, इधर आकर आओ !

[फिर हुक्का गुड़गुड़ाने लगते हैं । परेश चुपचाप आकर दादा के पास बैठ जाता है ।]

दादा—(हुक्का गुड़गुड़ाना छोड़कर) मुझे कर्मचन्द से अभी पता चला है कि तुम्हारी बहू को रज़ाई के अंदर और मलमल का थान सन्द नहीं आया । तुम्हारे ताऊ ठहरे पुराने समय के आदमी, वे नये फैशन की चीज़ें खरीदना क्या जानें ? अभी तो मैं कहता हूँ कि छोटी बहू को बाज़ार ले जाओ । वह स्वयं अपनी पसन्द की चीज़ें ले आयेगी ।

परेश—जी...

दादा—(हुक्के का कश लगाकर) और मैं सोचता था कि अब

बहू आ गयी है तो इन्दू का दहेज़ तैयार करने में भी सहायता देगी।

परेश—जी मैं इसलिए आया था...

दादा—हाँ, हाँ कहो, भिन्नकते क्यों हो !

परेश—जी बात यह है कि इस घर में बेला का मन नहीं लगता।

दादा—इतनी जल्दी उसका मन कैसे लग सकता है बेटा। अभी कै दिन हुए हैं उसे आये ? और फिर बेटा मन लगता नहीं लगाया जाता है।

परेश—वह मन लगाती ही नहीं।

दादा—तो हमें उसका मन लगाना चाहिए। वह एक बड़े घर से आयी है। अपने पिता की इकलौती बेटो है। कभी नाते-रिश्तेदारों में नहीं रही। इस भीड़-भाड़ से वह घबराती होगी। इतने कोलाहल से वह ऊब जाती होगी। हम सब मिलकर इस घर में उसका मन लगायेंगे।

परेश—उसे कोई भी पसन्द नहीं करता। सब उसकी निन्दा करते हैं। अभी मेरे पास माँ, बड़ी ताई, मँझली ताई, बड़ी भाभी, मँझली भाभी, इन्दु, रजवा—सब आयी थीं। सब उसकी शिकायत करती थीं—ताने देती थीं कि तू उसके हाथ बिक गया है, तू उसे कुछ नहीं समझाता और इधर वह उन सब से दुखी है, कहती है—सब मेरा अपमान करती हैं, सब मेरी हँसी उड़ाती हैं। मेरा समय नष्ट करती हैं। मैं ऐसा महसूस करती हूँ, जैसे मैं परायों में आ गयी हूँ। अपना एक भी मुँह दिखायी नहीं देता...आप मेरी मानें तो.....

दादा—हाँ, हाँ, कहो.....

परेश—बात यह है कि वह आज्ञादी चाहती है। दूसरों का हस्तक्षेप, दूसरों की आलोचना उसे पसन्द नहीं... !

(दादा सिर्फ़ हक्का गुड़गुड़ाते हैं ।)

—वह समझती है कि वह छोटी बहू है, इसलिए सब उसकी

आलोचना करना, उसे आदेश देना अपना कर्तव्य समझते हैं ।...

(दादा सिर्फ हुक्का गुड़गुड़ाते हैं ।)

—और वह अपनी पृथक् गृहस्थी बसाना चाहती है । जहाँ उसे कोई रोकना पाना न हो । तहाँ वह स्वेच्छापूर्वक अपना जीवन बिता सके । वह चाहती है कि यदि बाग वाला मकान उसे मिल जाय तो वह मुग्न और शान्ति से रहे । मैं तो सदैव यहाँ बना न रहूँगा, कुछ ही दिनों की बात है । मेरी तब्दीली हो जायगी । उन्ने दिन को यदि आप बाग वाले मकान का प्रबन्ध कर दें !...उसकी सारी उद्विग्नता, अन्य-मनस्कता और तिलमिलाहट में उसकी यही इच्छा काम करती है । अब मैं उसे कैसे समझाऊँ ।.....

दादा—(कुछ क्षण चुपचाप हुक्का गुड़गुड़ाते हैं फिर) हूँ ! (खाँसते हैं) यों तो हम भ्रष्ट से छुटकारा पाने का सरल उपाय यही है कि तुम्हें बाग वाला मकान दे दिया जाय—वह पड़ा भी बेकार है और अभी मैं उससे किसी तरह का काम लेने का भी इरादा नहीं रखता, पर तुम जानते हो वेदा, मेरे जीने जी यह असम्भव है । (फिर हुक्का गुड़गुड़ाते हैं) मैं जब अपने परिवार का ध्यान करता हूँ तो मेरे सामने वह का महान पेड़ घूम जाता है (खाँसकर) शाखाओं, पत्तों, फलों, फूलों से भरा-पूरा (हुक्के के एक-दो कश लगाते हैं) और फिर मेरी आँखों के सामने इस महान वृक्ष की डालियाँ टूटने लगती हैं और वह केवल टूट रह जाता है (स्वर धीमा, जैसे अपने-आप से कह रहे हैं) और मैं सिहर उठता हूँ । न वेदा, मैं अपने जीते जी यह सब न होने दूँगा । तुम चिन्ता न करो । मैं सबको समझा दूँगा—घर में किसी को तुम्हारी पत्नी का तिरस्कार करने का साहस न होगा । कोई उसका समय नष्ट न करेगा । ईश्वर की अपार कृपा से हमारे घर सुशिक्षित, सुसंस्कृत बहू आयी है तो क्या हम अपनी मूर्खता से उसे परेशान कर देंगे ? तुम जाओ वेदा, किसी प्रकार की चिन्ता को मन में

स्थान न दो। मैं कोई-न-कोई उपाय ढूँढ़ निकालूँगा। तुम विश्वास रखो, वह अपने-आपको परायों से घिरी अनुभव न करेगी। उसे वही आदर-सत्कार मिलेगा जो उसे अपने घर में प्राप्त था।

परेश—जैसा आप उचित समझें।

दादा—और देखो, तुम स्वयं भी इस बात का ध्यान रखना, तुम्हारी किसी बात से उसका मन न दुर्गे। कोई भी ऐसी बात न करो जिससे वह अपना अपमान समझे।

(परेश चलने को होता है ।)

—और तुम उसे साथ ले जाकर नगर से सब चीजें खरीद लाओ। शेष की चिन्ता तुम न करो, मैं कोई-न-कोई रास्ता अवश्य निकाल लूँगा।

परेश—जैसा आपकी इच्छा।

[चला जाता है। दादा फिर हुक्का गुड़गुड़ाने लगते हैं। हुक्के के कश लखे हैं, जो इस बात के साक्षी हैं कि दादा हुक्का पीने के साथ-साथ सोच भी रहे हैं।]

—(जैसे अचानक उन्हें कुछ सूझ गया हो) रजवा... रजवा...(फिर हुक्का गुड़गुड़ाते हैं, रजवा नहीं आती, फिर आवाज़ देते हैं) रजवा...रजवा.....

रजवा—(दूर से) जी आयी।

(भागती हुई-सी प्रवेश करती है ।)

दादा—छोटी बहू के अतिरिक्त सबको यहाँ भेज दो। कहाँ कि सब काम छोड़कर मेरे पास आयें (रजवा जाने लगती है) और सुनो, कोई न रहे—सब से कहना, कुछ क्षण के लिए अवश्य यहाँ आ जायँ।

रजवा—जी मैं अभी जाकर सब से कहे देती हूँ।

[चली जाती है। दादा फिर हुक्का गुड़गुड़ाने लगते हैं। नल से किसी के कपड़े धोने की आवाज़ आने लगती है। दादा और भी

लम्बे-लम्बे कश लेते हैं। धीरे-धीरे कुटुम्ब के प्राणी आने लगते हैं। बालक और युवक तख्त और चारपाइयों पर बैठते हैं और स्त्रियाँ बरामदे के फर्श पर। रजवा उनके बैठने के लिये मोढ़े और चटाइयाँ लाकर बिछा देती है।]

दादा—(हुक्का पीना छोड़कर) इन्दु कहाँ है, वह नहीं दीखती ?

[फिर हुक्का गुड़गुड़ाने लगते हैं और एक नज़र सबको देखते हैं। रजवा स्नान-गृह को जानेवाले दरवाज़े में जाकर इन्दु को आवाज़ देती है। कपड़े धोने का स्वर, जो इस बीच निरन्तर आता रहा है, सहसा बन्द हो जाता है।]

इन्दु—(बाहर से) जी आयी (अन्दर आकर) मैं नल पर थी, कपड़े धोने में लगी थी।

दादा—(एक कश खींचकर) बैठो बेटा (एक-दो क्षण तक हुक्का गुड़गुड़ाते हैं) मैंने आज तुम सब को एक विशेष अभिप्राय से बुलाया है। मुझे यह सुनकर बड़ा दुःख हुआ कि छोटी बहू का मन यहाँ नहीं लगा।

इन्दु—दादा जी...

दादा—इन्दु बेटा, मुझे अपनी बात कह लेने दो। मुझे यह जानकर बड़ा दुःख हुआ कि छोटी बहू का मन यहाँ नहीं लगा। दोष उसका नहीं, दोष हमारा है। वह एक बड़े घर की बेटाई है, अत्यधिक पढ़ी-लिखी है। सबसे आदर पाती और राज करती आयी है। यहाँ वह केवल छोटी बहू है। यहाँ उसे हर एक का आदर करना पड़ता है; हर एक से दबना पड़ता है; हर एक का आदेश मानना पड़ता है—यहाँ उसका व्यक्तित्व दबकर रह गया है। मुझे यह बात पसन्द नहीं (कुछ क्षण हुक्का गुड़गुड़ाते हैं, फिर) बेटा, बड़ा वास्तव में कोई उमर से या दर्जे से नहीं होता। बड़ा तो बुद्धि से होता है, योग्यता से होता है। छोटी बहू उम्र में न सही, अक्ल में हम सब से निश्चय ही बड़ी है।

हमें चाहिए कि उसकी बुद्धि से, उसकी योग्यता से लाभ उठायें। मेरी इच्छा है कि उसे यहाँ वही आदर-सत्कार मिले जो उसे अपने घर में प्राप्त था। सब उसका कहना मानें, उससे परामर्श लें और मैं प्रसन्न हूँगा, यदि उसका काम भी तुम लोग आपस में बाँट लो और उसे पढ़ने-लिखने का अधिक अवसर दो। उसे अनुभव ही न हो कि वह किसी दूसरे घर में, किसी दूसरे वातावरण में आ गयी है।

(फिर कुछ क्षण हुक्का गुड़गुड़ाते हैं, फिर)

—वेदा यह कुटुम्ब एक महान् वृक्ष है। हम सब इसकी डालियाँ हैं। डालियों ही से पेड़ पेड़ है और डालियाँ छोटी हों चाहे बड़ी, सब उसकी ल्याया को बढ़ाती हैं। मैं नहीं चाहता, कोई डाली इससे टूटकर पृथक् हो जाय। तुम सदैव मेरा कहा मानते रहो हो। बस यही बात मैं कहना चाहता हूँ.....यदि मैंने सुन लिया—किसी ने छोटी बहू का निरादर किया है, उसकी हँसी उड़ायी है या उसका समय नष्ट किया है तो इस घर से मेरा नाता सदा के लिए टूट जायगा.....अब तुम सब जा सकते हो।

(फिर हुक्का गुड़गुड़ाते हैं। सब धीरे-धीरे जाने लगते हैं।)

दादा—इन्दु वेदा और मँभली बहू, तुम ज़रा बैठो।

(दोनों के अतिरिक्त शेष सब चले जाते हैं।)

—मँभली बहू, तुम अपनी हँसी को उन लोगों तक ही सीमित रखो वेदा, जो उसे सहन कर सकते हैं। बाहर के लोगों पर घर में बैठकर हँसा जा सकता है, किन्तु घर के लोगों को तब तक हँसी का निशाना बनाना ठीक नहीं, जब तक वे पूर्णतया घर का अंग न बन जायँ और इन्दु वेदा, तेरी छोटी भाभी बड़ी बुद्धिमती, सुशिक्षित और सुसंस्कृत है; तुम्हें उसकी हँसी उड़ाने, उससे लड़ने-भगड़ने के बदले उसका आदर करना चाहिए, उससे शानार्जन करना चाहिए। तुम दोनों

को मैं इस विषय में विशेषकर सावधान रहने का आदेश करता हूँ ।

(फिर हुक्का गुड़गुड़ाने लगते हैं, फिर क्षण भर बाद)

—अब तुम जाओ और देखो फिर मुझे शिकायत का अवसर मिले (गला भर आता है) यही मेरी आकांक्षा है कि सब डालियाँ साथ-साथ बढ़ें, फलें-फूलें, जीवन की सुखद, शीतल वायु के परस से भूमें और सरसायें ! पेड़ से अलग होनेवाली डाली की कल्पना ही मुझे सिहरा देती है ।

(फिर हुक्का गुड़गुड़ाने लगते हैं ।)

इन्दु—हमें क्षमा कीजिए दादा जी, हमारी ओर से आपको कभी शिकायत का अवसर न मिलेगा ।

[दोनों चली जाती हैं । दादा कुछ देर हुक्का गुड़गुड़ाने हैं, फिर बाहर खेलते हुए बच्चों को आवाज देते हैं :]

—भापी, मल्लू, जगदीश, आओ आज तुम्हें एक कहानी सुनायें...बरगद के पेड़ और उसके बच्चों की ।

भापी—(दरवाजे से भाँककर) हम सुन चुके हैं । हम नहीं आते । हर बार वही कहानी.....

मल्लू—चाँद राजा, तारा राजा की सुनाओ तो आयें । हर बार वही कहानी (नकल उतारकर) एक था बरगद का पेड़.....

(हँसते हुए अट्ठश्य हो जाते हैं ।)

दादा—(हँसते हैं) यही कहानी—यही कहानी तो कुटुम्ब का, समाज का, राष्ट्र का निर्माण करती है । यही तो जीवन को सुदृढ़, विशाल और महान् बनाती है ।

(हुक्का गुड़गुड़ाने लगते हैं ।)

[पर्दा गिरता है ।]

तीसरा दृश्य

[वही बरामदा—दोनों तहत पूर्ववत् खिड़कियों के बराबर रखे हुए हैं और चारपाइयाँ वैसे ही दीवार के साथ लगी खड़ी हैं। हाँ, कुर्सी मध्य में आ गयी है—लगता है कि इस पर छोटी बहू—बेला—बैठी धूप ले रही थी—किन्तु पर्दा उठने पर वह घाकूलता से बरामदे में घूमती हुई दिखायी देती है—एक हाथ में पुस्तक है, मानो पढ़ते-पढ़ते कोई विचार आ जाने से उठकर घूमने लगी हो।]

बेला—(अपने-आप से) मैं किन लोगों में आ गयी हूँ ? ये कैसे लोग हैं.....कुछ भी समझ नहीं पाती.....आज कुछ हैं कल कुछ... पल में तोला, पल में माशा.....इनका कुछ भी तो पता नहीं चलता।

(फिर सोचती हुई धीरे-धीरे घूमती है।)

—गर्म होते हैं तो आग बन जाते हैं और नर्म होते हैं तो मोम से भी कोमल दिग्वायी देते हैं। आज जिस बात को बुरा कहते हैं, कल उसी की प्रशंसा करते हैं—मैं तो तंग आ गयी इन लोगों से।

[जाकर फिर कुर्सी पर बैठ जाती है और पुस्तक खोल लेती है। अन्दर गैलरी से उसकी सास, छोटी भाभी आती है।]

छोटी भाभी—तुम ठीक कहती थीं बेटी, इस रद्दी सामान से बैठक बैठक नहीं, कबाड़ी का गोदाम दिखायी देती थी ! सोचती थी कि यह सामान इतने दिनों से इस कमरे में पड़ा है, कुछ ऐसा बुरा भी नहीं और इस पर इतनी देर से सब बैठते आ रहे हैं, कहीं दादा जी बुरा न मानें; पर अच्छा किया तुमने जो वह सब उठा दिया। मैंने परेश से कह दिया है—तुम उसके साथ जाकर अपनी रुचि का सामान खरीद लाओ। यह सब मैं रजवा से कहकर सुरेश के कमरे में भिजवा देती हूँ। कई बार निगोड़ी इन्हीं कुर्सियों के लिए मुझसे रूठ चुका है।

बेला—आप बैठिए माँ जी...

छोटी भाभी—बस तुम बैठो बेटी। मैं तो योंही तुम्हें इधर बैठे देखकर चली आयी। अनाज पड़ा है उसे फटकना है; मिचें पड़ी हैं, उन्हें कूटना है; मक्खन कई दिनों का इकट्ठा हो गया है, उसका घी बनाना है—बीसों दूसरे काम हैं और दिन ढल रहा है। मैं सोचती थी, तुमने मेरी बात का बुरा न माना हो। वास्तव में बेटी, रजवा मेरे पास आकर फूट-फूटकर रो दी। नौकरानी समझदार, विश्वसनीय और आशाकारी है, किन्तु जो काम उसने कभी किया न हो, वह उससे किस प्रकार हो सकता है?

बेला—(उठती हुई) आप बैठिए तो...

छोटी भाभी—(उसके कन्धों पर हाथ रखकर उसे बैठाते हुए) बैठो-बैठो बेटी, कष्ट न करो। मैं तुम्हारा अधिक समय नष्ट न करूंगी। मैं तो केवल तुमसे उसकी सिकारिश करने आयी थी। भावुक स्त्री है, जल्दी ही बात का बुरा मान जाती है। तुम यों करना कि ज्योंही नया फर्नीचर आ जाये, अपने सामने लगवाकर रजवा को एक बार झाड़ना-बुहारना सिखा देना। फिर वह गलती नहीं करेगी, न हो तो कभी मुझे बता देना। मैं उसे समझा दूँगी।

बेला—नहीं, नहीं, आप...

छोटी भाभी—तुम पढ़ी-लिखी समझदार हो बेटी, इसलिए तुमसे इतना कह दिया है। यों तुम न चाहो तो कोई दूसरा प्रबन्ध हो जायगा। तुम इस बात की तनिक भी चिंता न करो।

(चलने को उद्यत होती हैं।)

बेला—आप तो बैठिए सही...

छोटी भाभी—नहीं, नहीं, तुम अपना पढ़ो। मैं वृथा तुम्हारा समय नष्ट न करूंगी।

(चली जाती हैं।)

बेला—(पुस्तक बन्द करके लम्बी सांस लेती हुई जैसे अपने-आप)

इन लोगों की कुछ भी तो समझ में नहीं आती। ये माँ जी एकदम कैसे बदल गयीं ? अभी परसों मुझे इसी रजवा के लिए डौंट रही थीं। इनका कुछ भी तो पता नहीं चलता।

[फिर पढ़ने लगती है। बड़ी बहू और मँझली भाभी बाहर के दरवाजे से प्रवेश करती हैं।]

मँझली भाभी—क्यों बेटी, अब रजवा कुछ काम सीख गयी है या नहीं। (ज़रा हँसती है) बुढ़िया है तो सयानी.....

बड़ी बहू—आपने इन्दु से ठीक ही कहा था। हमें वास्तव में काम की परख नहीं, पर अब.....

बेला—आइए इधर बैठिए, चारपाई सरका लीजिए।

मँझली भाभी—(वैसे ही खड़े-खड़े) मैंने एक अनुभवी नौकरानी ग्लोज लाने के लिए कह दिया है जो नये फैशन के बड़े घरों में काम कर चुकी हो। वास्तव में बहू, दादा जी पुराने नौकरों के हक में हैं—दयानतदार होते हैं और विश्वसनीय। हमारे पास पीढ़ी-दर-पीढ़ी काम करते आ रहे हैं। इस रजवा की सास भी यहीं काम करती थी, अब रजवा को बहू भी यहीं काम करती है.....

बड़ी बहू—मैं कहती हूँ बहन जो, आप रजवा की बहू को ही अपने पास क्यों नहीं रख लेतां.....उसकी उमर भी कम है और काम भी वह जल्दी सीख जायगी।

बेला—(अन्यमनस्क-सी) नहीं, नये नौकर की आवश्यकता नहीं। रजवा काम सीख जायगी, (कुछ चिढ़कर) पर आप खड़ी क्यों हैं ?

मँझली भाभी—हम तुम्हारा हर्ज न करेंगी

बेला—(और भी चिढ़कर) मेरा कुछ हर्ज नहीं होता।

बड़ी बहू—हम आप से छोटी हैं, वर्ग में भी और बुद्धि में भी...

बेला—(रुपांसी आवाज़ में) आप मुझे क्यों काँटों में घसीटती

हैं.....आप मेरे साथ क्यों परायों का-सा व्यवहार करती हैं.....

(उठ खड़ी होती है ।)

बड़ी बहू—वैठिए-वैठिए, मँझली भाभी, आप भी बैठिए.....

बेला—मैं चलती हूँ...

[रुलाई को रोककर आँखों पर रुमाल रखे जल्दी-जल्दी चली जाती है ।]

मँझली भाभी—(जैसे अपने-आप से) परायों का-सा.....

[बाहर से मँझली बहू के कहकहे की आवाज़ आती है—दूसरे क्षण वह इन्दु और पारो के कंधे पर झूलती हुई बाहर के दरवाजे से आती है ।]

इन्दु—सच...

मँझली बहू—(हँसी रोककर) और क्या मैं झूठ कह रही हूँ ? मैंने अपनी इन दो आँखों से देखा (हँसती है) मलावी ने सारी-की-सारी छत फावड़े से खोद डाली और बंसीलाल महाशय मुँह देखते रह गये ।

(सब ठहाका मारकर हँस पड़ती हैं ।)

बड़ी बहू—भाई मुझे भी बताना...क्या किया मलावी ने..... सच !

[मँझली बहू चारपाई बिछाकर उसमें धँस जाती है । उसकी एक ओर इन्दु और दूसरी ओर पारो बैठ जाती है । मँझली भाभी कुर्सी पर बैठती है और बड़ी बहू खड़ी रहती है ।]

मँझली भाभी—(कुर्सी को ज़रा खिसकाकर समीप होते हुए) बंसीलाल के सामने उखाड़कर फेंक दी छत मलावी ने ?

मँझली बहू—मैं कहती हूँ...मुँह देखते रह गये बंसीलाल महाशय, ताका किये मुटर-मुटर.....

(सब ठहाका लगाती हैं ।)

बड़ी बहू—अरे कौन-सी छत खोद डाली यह तो बताओ.....

मँभली बहू—रसोई को और कौन-सी। अभी दो घण्टे भी नहीं हुए कि राज-मजदूर छत डालकर गये थे और बंसीलाल कारीगरों और मजदूरों से निबट कर अभी दुकान को गया था कि आ गयी उधर से मलावी मारोमार करती। जानें किसने उसे जाकर बताया कि तुम्हारे देवर ने अपनी रसोई पर छत डाल ली है। लेके फावड़ा बस सारी-की-सारी छत उसने खोद डाली। बंसीलाल तब पहुँचे जब अन्तिम कड़ी भी उखड़ चुकी थी। तब क्या करते—बस ताका किये मुटर-मुटर.....

(मँभली भाभी को छोड़कर सब हँसती हैं।)

मँभली भाभी—पर बंसीलाल का लड़का...

मँभली बहू—गली के सिरे पर खड़ा खम ठोंक रहा है।

(जंघा पर हाथ मार कर बताती है कि कैसे खम ठोंक रहा है।)

इन्दु—खम ठोंक रहा है ?

मँभली बहू—(कहकहा लगाती है) सच, खम ठोंक रहा है और हवा ही में ललकार रहा है कि मैं ड्योढ़ी की छत खोद डालूँगा; मैं मकान को खण्डहर बना दूँगा; मैं यह कर दूँगा, मैं वह कर दूँगा, और इधर मलावी कमर कसे खड़ी है कि आये जो माई का लाल है, रक्खे पाँव घर के भीतर.....

(सब हँसती हैं !)

इन्दु—(अंगुली ओठों पर रखकर) शश...श...श भाभी आ रही हैं।

[हँसी एकदम बन्द हो जाती है; सन्नाटा छा जाता है—बेला एक हाथ में बन्द किताब थामे धीरे-धीरे सीढ़ियाँ उतरती है।]

बेला—क्यों जीजी, आप चुप हो गयीं (ज़रा हँसकर) किस बात पर कहकहे लगाये जा रहे हैं ?

मँभली भाभी—(कुर्सी से उठकर) योंही हँस रही थीं। आओ

इधर कुर्सी पर बैठो ।

बेला—नहीं-नहीं आप बैठिए । मैं इधर तख्त पर बैठ जाती हूँ ।

मँभली बहू—(जल्दी से उठकर) आइए-आइए, आप इधर बैठिए ।

इन्दु और पारो—(दोनों चारपाई से उठ जाती हैं) आइए, आइए, आप इधर बैठिए ।

[फिर नीरवता छा जाती है जिसमें एक प्रकार की घुटन है ।

बेला बाहर की ओर चल पड़ती है ।]

इन्दु—बैठिए भाभी जी, आप चलो क्यों ?

बेला—(मुड़कर क्लान्त तथा भारी स्वर में) मैं तो उधर ही जा रही थी । योही जाते-जाते खड़ी हो गयी । मैं आपकी हँसी में बाधा नहीं डालना चाहती । (खिन्न स्वर में हंसी के साथ) आप हँसिए, ठहाके मारिए ।

(चुपचाप अहाते के दरवाजे से निकल जाती है ।)

मँभली बहू—मैं कहती थी न कि इस ओर न आओ ? मेरी मुई आदत हुई हँसने की ।

इन्दु—अब एक यही जगह थी बैठने को...

मँभली बहू—हम हँसती हैं तो हँसती हैं दिल से और छोटी बहू के पढ़ने-लिखने में बाधा पड़ती है । मैं कहती हूँ, दादा जी को यदि पता चल गया कि हमारे यहाँ बैठने से छोटी बहू के पढ़ने में खलल आता है तो वे...

इन्दु—किन्तु यही एक जगह थी पढ़ने वाली...

मँभली बहू—तुम भूल गयीं, हमें ही तो दादा जी ने खास तौर पर सतर्क रहने को कहा था (कहकहा लगाकर हँस पड़ती है) मैं कहती हूँ, चलो मेरे कमरे में ।

इन्दु—मुझे तो दादा जी के कपड़े धोने हैं, मैं चली ।

(जल्दी-जल्दी बाहर की ओर चली जाती है ।)

मँझली भाभी—ठीक है । तुम लोग अब यहाँ इतना न बैठा करो (बड़ी बहू से) हम तो बहू गोदाम में जा रही थीं, चलो गेहूँ छुटवा लें । छोटी बहन तो कब की गयी हुई है । फिर तो अम्त हो जायगा दिन, और महरियाँ चली जायँगी ।

बड़ी बहू—मैं तो फँस गयी मँझली की बातों में...चलो...चलो ।

(दोनों चली जाती हैं ।)

मँझली बहू—मैं कहती हूँ पारो, चल मेरे कमरे में । वहाँ चल कर बैठें ।

पारो—(चलते हुए) मुझे तो जाना है भाभी । लल्ला आ गया होगा, न मिली तो चिल्लायेगा ।

मँझली बहू—(अपने-आप से) यह छोटी बहू तो उकाव-सी आकर सबको डरा गयी !

[पारो चली जाती है । बाहर से बड़ी भाभी आती हुई दिखायी देती है, मँझली बहू भागकर उसके पास जाती है ।]

—बड़ी भाभी, सुनी तुमने मलावी की बात, खोद डाली उसने सारी-की-सारी छत ।

(कहकहा लगाती है ।)

बड़ी भाभी—मालवी ने छत खोद डाली...

मँझली बहू—(उसे अपने साथ लेकर कमरे की ओर जाती हुई) हाँ, हाँ, अभी राज-मज़दूर छत बनाकर गये थे कि आ गयी मलावी मारोमार करती.....

बड़ी भाभी—पर...

मँझली बहू—चलो मेरे कमरे में । वहाँ चल कर सब बताती हूँ । यहाँ तो छोटी बहू की पढ़ाई में बाधा पड़ती है ।

[उसे साथ लेकर अपने कमरे की ओर जाती है। बाहर से परेश और बेला बातें करते प्रवेश करते हैं।]

बेला—(आर्द्र कंठ से) आप मुझे मेरे मायके भेज दीजिए। मुझे ऐसा लगता है जैसे मैं अपरिचितों में आ गयी हूँ। कोई मुझे नहीं समझता, किसी को मैं नहीं समझती।

परेश—आखिर बात क्या है ! कुछ कहो भी।

बेला—मैं जाती हूँ तो सब खड़ी हो जाती हैं। बड़ी भाभी, मँझली भाभी और माँ जी तक ! मेरे सामने कोई हँसता नहीं, कोई मुझसे अधिक समय तक बात नहीं करना चाहता। सब मुझसे ऐसा डरती हैं जैसे मुर्गा के बच्चे बाज़ से। अभी-अभी सब हँस रही थीं, ठहाके-पर-ठहाके मार रही थीं, मैं गई तो सब ऐसे सब रह गयीं जैसे भरी सभा में किसी ने चुप की सीटी बजा दी हो।

परेश—पर इसमें...

बेला—और कोई मुझे काम को हाथ नहीं लगाने देती। तनिक-सा भी काम करने लगूँ तो सब भागी जाती हैं। सब मेरा इस प्रकार आदर करती हैं, मानो मैं ही इस घर में सब से बड़ी हूँ।

परेश—मैं नहीं समझता तुम क्या चाहती हो ? तुम्हें शिकायत थी, कोई तुम्हारा आदर नहीं करता; अब सब तुम्हारा आदर करते हैं। तुम्हें शिकायत थी, तुम्हें सब से दबना पड़ता है; अब सब तुम से दबते हैं। तुम्हें शिकायत थी, तुम सब का काम करती हो; अब सब तुम्हारा काम करते हैं। आदर, सत्कार, आराम—न जाने तुम और क्या चाहती हो ?

(तेजी से सीढ़ियाँ चढ़ जाता है।)

बेला—(निढाल होकर कुर्सी में धँस जाती है) न जाने मैं क्या चाहती हूँ ? (सिसकने लगती है) न जाने मैं क्या चाहती हूँ ? पर मैं इतना जानती हूँ कि मैं यह सब आदर, सत्कार, सुख, आराम नहीं

चाहती !

[बाहों में मुँह छिपा कर सिसकती है । इन्दु हाथ में कुछ मेले कपड़े लिये हुए बाहर के दरवाजे से प्रवेश करती है ।]

इन्दु—भाभी जी...

बेला—(उसी प्रकार चुप बैठी रहती है ।)

इन्दु—(बेला के कन्धे को हिलाकर) भाभी जी...भाभी जी...

(बेला मुँह ऊपर उठाती है ।)

इन्दु—हैं, भाभी जी, आप तो रो रही हैं ?

बेला—(आँखें पोंछकर) नहीं मैं रो नहीं रही, पर इन्दु परमात्मा के लिए मुझे 'जी' 'जी' करके न बुलाया करो ।

इन्दु—लो भला यह कैसे हो सकता है । आप मुझसे बड़ी हैं और फिर आप मुझसे कहीं अधिक पढ़ी-लिखी हैं ।

बेला—पहले तो तू मुझे यों 'जी' 'जी' करके नहीं बुलाती थी ?

इन्दु—मैं तो मूर्ख ठहरी भाभी जी । दादा जी ने कहा था...

बेला—(सहसा चौंककर) दादा जी ने क्या कहा था ?

इन्दु—उन्होंने सब को समझाया था कि घर में सबको आपका आदर करना चाहिए ।

बेला—किन्तु उन्होंने यह सब क्यों कहा ? मैंने तो कभी उनसे इस बात की शिकायत नहीं की ?

इन्दु—शायद छोटे भय्या ने उनसे यह कहा था कि आप का जी यहाँ नहीं लगता, आप बाग वाले.....

बेला—ओह ! यह बात है ।

इन्दु—दादा जी और सब कुछ सह सकते हैं किसी का अलग होना नहीं सह सकते—'हम सब एक महान् पेड़ की डालियाँ हैं,' वे कहा करते हैं, 'और इससे पहले कि कोई डाली टूटकर अलग हो, मैं ही इस घर से अलग हो जाऊँगा' और उन्होंने हम सब को समझाया

कि हम आपका आदर करें काम करें, और आपको पढ़ने-पढ़ाने का समय दें ।

बेला—पर मैं तो आदर नहीं चाहती और मैं तो तुम सब के साथ मिलकर काम करना चाहती हूँ ।

इन्दु—यह कैसे हो सकता है भाभी जी...?

बेला—(दीर्घ निश्वास छोड़ती हुई) आप लोगों ने मुझे कितना ग़लत समझा और मैंने आप लोगों को कितना...

इन्दु—आप कैसे बातें करती हैं । लाइए, कपड़े लाइए । मैं दादा जी के कपड़े धोने जा रही हूँ, साथ ही आपके भी फटक लाऊँ ।

बेला—(चुप सोचती है ।)

इन्दु—भाभी जी...

बेला—(जैसे मन-ही-मन उसने किसी बात का निश्चय कर लिया हो) मैं भी तुम्हारे साथ जाऊँगी, मैं भी तुम्हारे साथ कपड़े धोऊँगी ।

इन्दु—दादा जी नाराज़ न होंगे...

बेला—मैं दादा जी से कह दूँगी ।

इन्दु—भाभी जी...

बेला—मुझे केवल भाभी कहा कर, मेरी प्यारी इन्दु ।

इन्दु—(प्यार से भरे हुए गले के साथ) भाभी...

बेला—चल कपड़े धोयें । धूप निकली जा रही है !

इन्दु—पर आपके कपड़े...

बेला—मेरे कपड़े आज रजवा ने धो दिये थे, शलवार कमीज़ ही तो थी । चल मैं तेरी सहायता करूँगी ।

[दोनों चली जाती हैं, कुछ क्षण बाद बरामदे में कपड़े धोने का शब्द आने लगता है । दादा गैलरी की ओर से हुक्का गुड़गुड़ाते-गुड़गुड़ाते, मल्लू की अँगुली थामे प्रवेश करते हैं ।]

दादा—हाँ बेटा, मेले में ले चलेंगे । जो तू कहेगा, वही खिलौना ले देंगे ।

मल्लू—मैं तो उड़न-खटोला लूँगा ।

(सहसा बाहर के दरवाजे के पास जाकर ठिठक जाते हैं ।)

दादा—(आश्चर्य से) हैं ! छोटी बहू...

इन्दु—(बाहर से) मैंने तो बहुतेरा कहा पर भाभी मानी नहीं ।

दादा—छोटी बहू, इधर आ बेटी !

(शरमाई हुई बेला दरवाजे के पास जा खड़ी होती है ।)

—बेटा कपड़े धोना तुम्हारा काम नहीं, पढ़-लिखकर...

इन्दु—(जो अपनी भाभी के साथ ही आ खड़ी हुई है) मैंने बहुतेरा कहा पर भाभी नहीं मानी...

दादा—(जिन्हें इन्दु के स्वर का अनादर अच्छा नहीं लगा) इन्दु, तुझे इतनी बार कहा है कि आदर मे...

बेला—(भावावेश के कारण रूंधे हुए कंठ से) दादा जी, आप पेड़ से किसी डाली का टूटकर अलग होना पसन्द नहीं करते, पर क्या आप यह चाहेंगे कि पेड़ से लगी-लगी वह डाल सूखकर मुरझा जाय...

(सिसक उठती है, हुक्के की गुड़गुड़ाहट एकदम बन्द हो जाती है ।)

[पर्दा सहसा गिर पड़ता है ।]

अश्क साहित्य

*

- * प्रसाद और प्रेमचन्द के बाद हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में किसी एक लेखक ने इतना ठोस और महत्वपूर्ण कार्य नहीं किया, जितना हिन्दी साहित्य के अथक साधक श्री उपेन्द्रनाथ अश्क ने।
- * क्या उपन्यास, क्या नाटक, क्या कविता, क्या कहानी क्या आलोचना, संस्मरण और निबन्ध, प्रत्येक क्षेत्र में अश्क जी ने एक सरीखी गति से हिन्दी साहित्य के उद्यान को सींचा है।
- * अश्क साहित्य जगह-जगह बिखरा होने के कारण एक साथ उपलब्ध न था। अब नीलाभ प्रकाशन ने अश्क जी की समस्त पुस्तकें एक जगह से छापकर उसे सब के लिए सुलभ बना दिया है।
- * हिन्दी का कोई भी व्यक्तिगत, सरकारी, अर्ध-सरकारी अथवा सार्वजनिक पुस्तकालय अश्क साहित्य के बिना पूर्ण नहीं कहला सकता। अश्क साहित्य बिहार, यू० पी०, राजस्थान, मध्य भारत, दिल्ली, पंजाब, सौराष्ट्र के स्कूल-कॉलेजों और सरकारी पुस्तकालयों तथा प्रौढ़ शिक्षा तथा पंचायत विभागों के लिए स्वीकृत है।
- * अश्क जी के एकांकी संग्रह 'चरवाहे' पर ८००; कहानी संग्रह 'कहानी लेखिका और जेहलम के सात पुल' पर ४०० और लघु उपन्यास 'बड़ी-बड़ी आँखें' पर २००० के पुरस्कार प्रान्तीय तथा केन्द्रीय सरकारों ने दिये हैं। अश्क साहित्य की सम्पूर्ण सूची निम्नलिखित है :—

*

संकेत शताधिक हिन्दी साहित्यकारों की रचनाओं

का अभूतपूर्व संकलन सं० अश्क रु० १५.००

उपन्यास

गिरती दीवारें रु० ११.००	पत्थर अल-पत्थर रु०	४.२५
गर्म राख रु० ८.००	बड़ी-बड़ी आँखें रु०	३.७५
चेतन रु० ६.७५	सितारों के खेल रु०	३.५०
चेतन (संक्षिप्त) रु० ३.५०	ये आदमी ये चूहे रु०	३.००
हिज एक्सलेंसी रु० २.५०	रंगसाज़ रु०	३.५०

कहानियाँ		नाटक	
७० श्रेष्ठ कहानियाँ रु०	१५.००	स्वर्ग की झलक रु०	२.००
छूँटे रु०	५.००	पैतरे रु०	३.२५
जुदाई की शाम का गीत रु०	३.७५	कैद और उद्धान रु०	२.७५
काले साहब रु०	३.२५	अजो दीदी रु०	२.७५
बैगन का पौधा रु०	३.२५	अंधी गली रु०	३.००
पिंजरा रु०	३.२५	अलग-अलग रास्ते रु०	३.००
दो धारा रु०	३.२५	छुटा बेटा रु०	२.२५
पलंग रु०	३.७५		
संस्मरण		एकांकी	
मंटो : मेरा दुश्मन रु०	५.००	पर्दा उठाओ	
मेम्बाएँ और चित्र रु०	४.००	पर्दा गिराओ रु०	३.७५
ज्यादा अपनी कम परायी रु०	४.००	पक्का गाना रु०	३.००
		देवताओं की छाया में रु०	२.७५
		चरवाहे रु०	३.००

अलोचना		संकलन	
उर्दू काव्य की एक नयी धारा रु०	२.५०	नये रंग-एकांकी रु०	३.२५
काव्य			

दीप जलेगा रु०	३.५०	चौदनी रात और अजगर रु०	३.२०
ब्रगद की बेटी रु०	३.००	सड़कों पे ढले साये रु०	५.००

विशिष्ट पुस्तकें

* 'संकेत' और 'सत्तर श्रेष्ठ कहानियाँ' अशक जी के दो विशिष्ट ग्रन्थ हैं। पहले ग्रन्थ में १०० से अधिक हिन्दी के आधुनिक साहित्यिकों की उत्कृष्ट कृतियाँ हैं और दूसरे में अशक जी की चुनी हुई श्रेष्ठ ७० कहानियाँ। साथ ही कहानी-लेखन के अपने ३२ वर्षों पर अशक जी ने एक अति मनोरंजक संस्मरण लिखा है। कोई व्यक्ति-गत अथवा सार्वजनिक पुस्तकालय इन ग्रन्थों के बिना न रहना चाहिए। डबल डिमाई एंटिक काराज, ६०० पृष्ठ, रेक्सन की मज़बूत जिल्द, मूल्य प्रति ग्रन्थ १५)

नीलाभ प्रकाशन

५, खुसरो बाग रोड, इलाहाबाद—१

